शीराज़ा

हिन्दी

जे. एण्ड. के. अकॉदमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,
जम्मू।

S.K.KAPOOR

द्विमासिक

हिन्दी

वर्ष : 32

अंक : 5

दिसम्बर-जनवरी 96-97

पूर्णांक 134

प्रमुख सम्पादक

बलवंत ठाकुर

सम्पादक

डॉ० उषा व्यास

संपर्क : सम्पादक, शीराज़ा हिन्दी, जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर

एंड लैंग्वेजिज़ जम्मू ।

फ़ोन : 579576 : 577643

मूल्य : 2 रुपये

वार्षिक : 10 रुपये

इस अंक में—

सम्पादकीय–

स्वाधीनता के उपरांत तीन दशकों के अनन्तर कहीं पर्याप्त रचे जाने के बावजूद हिन्दी साहित्य एक स्वतन्त्र और वैश्विक पहचान बना पाने में कहीं छूट गया। यह पड़ाव 'ठहराव' के रूप में भी संज्ञायित हो सकता है और प्रवृत्ति विशेष के रूप में भी।

नव लेखन में इस तथाकथित शून्य से उपजी अकुलाहट के तेवर मौजूद हैं। अपना धरातल छूट जाने की चिन्ता से परे रचनाकार अपना 'स्व' भूल गया। उगाही हुई वैचारिकता और पश्चिमी जमीन पर टिका समूचा साहित्य आज न केवल अप्रासंगिक हो गया है बल्कि हाशिये पर आ गया है।

साहित्य देश काल की सीमायें नहीं मानता। वह सार्वभौमिक होता है। इधर उसमें यही धारणा सुदृढ़ होती चली गयी कि प्रत्येक विदेशी विचार ही मौलिक एवं आखिरी सच है।

लोग ऐसे भी हैं जो तुलसी और सूर को जानना और मानना नहीं चाहते, कबीर और मीरा को मात्र वियोग राग और 'कामायनी' को एक छायावादी प्रयोग भर मान कर छोड़ देना चाहते हैं। उन लोगों में समाज और संस्कृति से जुड़ा गौरव भाव ही जैसे तिरोहित हो गया है।

यह सुखद है कि इस गौरव भाव को बनाये रखने के लिए सचेष्ट नव लेखन, साहित्य के लिये ऐसी भावभूमि जुटाने में सक्षम होगा जो समाज के लिये प्रेरक होगी। आवश्यकता है अपनी धुरी पर पांव जमा कर गंतव्य के प्रति स्वस्थ दृष्टि रखने की।

आधुनिकता-बोध की जीवंतता साहित्य की अनिवार्यता तो है किन्तु 'सच' उकेरते हुए यह भी तो ध्यान में रखना ही होगा कि महज व्यवस्था के प्रति आक्रोश और सामाजिक विसंगतियों की खुरदरी प्रस्तुति ही रचनात्मकता का लक्ष्य नहीं होता।

—उषा व्यास

हिन्दी उपन्यास-संदर्भ और महिला लेखन

□ डॉ० शीलम् वेंकटेश्वर राव

आज उपन्यास प्राय: सभी भाषाओं के साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा माना जाता है। उपन्यास अपने युग-जीवन का प्रतिविम्व होता है। विधात्मक रूप में आज उपन्यास से अभिप्राय बृहत् आकार के उस गद्य आख्यान अथवा वृत्तान्त से है जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों का चित्रण किया जाता है। संस्कृति के वाहक के रूप में उपन्यास की महती भूमिका है। वैसे भी संस्कृति से असम्पृक्त किसी कालजयी रचना की कल्पना सम्भव नहीं और उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है।

हिन्दी उपन्यास का आरम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। विद्वान् लोग हिन्दी उपन्यास का आरम्भ सन् 1882 से मानते हैं। इन एक सौ चौदह वर्षों के उपन्यास साहित्य के विकास में महिलाओं की भी एक विशिष्ट भूमिका रही है। निश्चय ही महिला लेखिकाओं ने उपन्यास-साहित्य को समृद्ध एवं गौरवान्वित किया है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने उपन्यास के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा था—"मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है। ...समग्र जीवन की आलोचना करना ही उपन्यास का मुख्य कर्म है।" इससे स्पष्ट है कि "उपन्यास सम्पूर्ण मानव जीवन के तथ्यों का उद्घाटन करना है। इस परिप्रेक्ष्य में बिना महिला-लेखिकाओं के योगदान के उपन्यास साहित्य एकांगी और अधूरा ही रह जाता है, क्योंकि किसी भी विधा में जब तक समाज के वर्ग विशेष के प्रतिनिधियों द्वारा मानव-समाज के समग्र जीवन के तथ्यों एवं प्रवाहमान जीवन की दशा-दिशाओं का उसमें उद्घाटन नहीं होता, तब तक वह विधा अपूर्ण ही रह जाती है। किसी भी विधा में क्या कहा गया है, वह उतना महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि उस तथ्य को किसने कहा, वह अधिक महत्वपूर्ण

होता है। इस दृष्टि से महिला-लेखिकाओं के योगदान से निश्चय ही उपन्यास साहित्य परिपूर्ण एवं परिपक्व हुआ है, इस तथ्य को हमें स्वीकार करना पड़ेगा।

दूसरी विचारणीय बात यह भी है कि महिला-लेखन की बात को उठाना महिला को सामाजिक विकास-क्रम से काटकर एक अलग-थलग अस्तित्व के रूप में स्थापित करना है या फिर एक महिला रचनाकार की चेतना को एक पुरुष रचनाकार की चेतना से निषेध में या विरोध में रख कर मूल्यांकन करना भी नहीं है, अपितु महिला-लेखन को मानवीय यथार्थ के अनछुए और अविचारित पहलू के रूप में प्रस्तुत करना ही इस आलेख का एक प्रयास मात्र है।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी का अन्तराल वास्तविक अर्थों में नारी मुक्ति-आंदोलन का युग था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी और अन्य महापुरुषों के निरन्तर प्रयत्नों के फलस्वरूप नारी की स्थिति में कुछ सुधार आ गया। देश की कुछ नारियां सुनिश्चित रूप से अपने भीतर आत्मविश्वास एवं शक्ति का अनुभव करने लगी थीं। जब सम्पूर्ण देश में समाज-सुधार की स्वर्णिम रश्मियां विकीर्ण हो रही थीं, तब नारी समाज ही उनके संस्पर्श से कैसे अछूता रह सकता था।

नारी मुक्ति का आन्दोलन मूलत: पश्चिम में प्रारम्भ हुआ था और जिसमें स्त्री-पुरुष की समानता प्रतिपादित की गई थी। लेकिन भारत में नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव कुछ दूसरे संदर्भ में हुआ। पश्चिमी आन्दोलन के समान यह आन्दोलन पुरुष जाति के विरुद्ध न होकर, भारतीय नारी की खोई हुई प्रतिष्ठा, स्वतन्त्रता और समानाधिकार की प्राप्ति के लिए था। प्रारम्भ में तो स्त्रियों की निजी समस्याएं-सुशिक्षित स्त्रियों के ध्यान के केन्द्र में रहीं, किन्तु शीघ्र ही स्वाधीनता-संग्राम उनका प्रमुख ध्येय हो गया।

अत: महात्मा गांधी ने स्वाधीनता-आन्दोलन में भाग लेने के लिए नारियों को उत्साहित किया, भारतीय नारी समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझने लगी थीं, अत: परिस्थिति से लाभ उठाकर अनेक भारतीय नारियां पूर्ण उत्साह के साथ राष्ट्रीय यज्ञ में अपना योगदान प्रदान करने लगीं।"[1] वस्तुत: भारतीय नारी के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन स्वयं अपनी मुक्ति का आन्दोलन भी था। अपने ही त्याग से उसने समानाधिकार प्राप्त किया। यों तो सन् 1857 में ही नारियों ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लेना आरम्भ कर दिया था। जिनमें अधिकांश उच्च वर्ग की नारियां थीं। इस स्वाधीनता संग्राम को प्रथम नारी मुक्ति आन्दोलन भी कह सकते हैं।

इस प्रकार भारतीय नारी मुक्ति आन्दोलन, स्वाधीनता-संग्राम के साथ ही जुड़ा हुआ है, क्योंकि इस स्वाधीनता-संग्राम से एक लाभ यह भी हुआ कि भारतीय नारी जो दासता की जंजीरों में जकड़ी हुई थी, खुलकर सामने आई। उन्होंने अपनी मुक्ति के साथ-साथ

---

1. आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएं : उमेश माथुर--पृ० 36-37,

देश को भी परतन्त्रता की जंजीरों से मुक्त कराने में सहयोग दिया। अत: अवसर और सुविधा प्राप्त होने पर नारी ने राजनीति और शासन जैसे जटिल क्षेत्रों में पुरुष से भी अधिक दक्षता, कुशलता और सफलता का परिचय दिया है।

साहित्य के क्षेत्र में महिलाओं का पदार्पण एक अलग उद्देश्य से हुआ। लेखन के माध्यम से नारी-अस्मिता की खोज उनका मुख्य ध्येय रहा है। नव जागरण एवं स्वाधीनता संग्राम में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली नारी अब लेखन में अपनी अस्मिता को खोजने लगी। इतना सब कुछ होते हुए भी उसका अपना अलग व्यक्तित्व नहीं था, उसकी अपनी एक अलग पहचान नहीं थी। नारी की दृष्टि केवल घर की चारदीवारी तक परिसीमित थी। वह किसी की पत्नी, बहन, मां, इन्हीं नामों से जानी जाती थी। नारी के सम्मुख अपनी अस्मिता का प्रश्न उठ खड़ा रहा। अत: नारी का अपना भी कोई स्वरूप है, कोई व्यक्तित्व है, जहां व्यक्ति का कार्य उसके व्यक्तित्व की सर्वोत्तम पहचान है। यह सन्तोष की बात है कि आज की नारी लेखन के माध्यम से अपनी अलग पहचान बना रही है।

आधुनिक युग की नारी लेखिकाएं अपनी अस्मिता के प्रति विशेष रूप से सजग रही हैं। मध्यकालीन मूर्च्छना के बाद समाज में नयी चेतना आधुनिक काल के साहित्य में वर्तमान स्थितियों से असन्तोष, सामाजिक व राष्ट्रीय भावनाएं विद्रोह, के स्वर, मानसिक ग्रन्थियों का खुलाव नारी साहित्य में दिखाई देने लगा।"[1]

काव्य रचना, कहानी-लेखन के साथ-साथ महिलाओं ने उपन्यासों में भी अपना सिक्का जमाया है। परन्तु महिला-लेखिकाओं ने काव्य एवं कहानी की अपेक्षा उपन्यास क्षेत्र में अपने कदम बहुत ही विलम्ब से रखे हैं। सामाजिक प्रतिबन्धों में आबद्ध महिलाओं के पास इतनी जागरुक प्रतिभा तथा समय कहां था कि अपने अनुभवों तथा कल्पनाजन्य भावों को उपन्यास के विस्तृत कलेवर में लिपिबद्ध कर पातीं। फिर भी जिन्होंने इस प्रतिभा का उन्मेष किया है, उनका प्रयास सराहनीय है।

वैसे हिन्दी उपन्यास साहित्य का आरम्भ भारतेन्दु युग से सन् 1882 से हुआ था, परन्तु महिला-उपन्यासकारों ने अपनी प्रतिभा का परिचय विलम्ब से दिया। वास्तव में उपन्यास क्षेत्र में इनका पदार्पण छठे दशक में मानना चाहिए। इसके भी कई कारण हैं। एक सौ वर्ष पहले उस युग की नारी अशिक्षित थी, दूसरे इसका कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही परिसीमित था। सामाजिक सुधार, नवजागरण एवं स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न आन्दोलनों के फलस्वरूप स्त्रियों में जागृति आई और नारी सुशिक्षित होने लगी, घर की चारदीवारी से हटकर उसका अनुभव-संसार विस्तृत होने लगा। अत: ज्यों-ज्यों उपन्यास-साहित्य प्रगति की दिशा में उन्मुख हुआ, त्यों-त्यों लेखिकाएं भी उस ओर अपनी जागरुकता का परिचय देती रहीं।

सन् 1890 से महिला-लेखिकाओं ने उपन्यास लिखने आरम्भ कर दिये। सर्वप्रथम

1, भारती नारी : दशा-दिशा : आशा रानी होरा।

महिला उपन्यासकार "साध्वी सती प्रति प्राण बाला" है। इनके बाद कई महिला-उपन्यास-कारों ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। महिला लेखिकाओं ने जिस युग में उपन्यास क्षेत्र में पदार्पण किया था, वह युग तिलिस्मी एवं घटना प्रधान उपन्यासों का था। अत: उस काल के उनके उपन्यासों में चरित्र आदर्श होते थे।

हिन्दी की प्रारम्भिक उपन्यास लेखिकाओं में शैल कुमारी देवी रुक्मिणी देवी, प्रियंवदा देवी आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने सर्वप्रथम उपदेशात्मक उपन्यासों की रचना की। उपदेश द्वारा ही नारी जाति में सुधार लाना चाहती थी। नारी जीवन की कहानी को सीधे-सादे शब्दों में रख देना ही इनका उद्देश्य था।

इसी अन्तराल में उषा देवी मिश्रा का आगमन उपन्यास क्षेत्र में वैसा ही हुआ, जैसे प्रेमचन्द का आगमन हुआ था। इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी-अस्मिता के प्रश्न को मुखरित किया। नारी को देवी नहीं अपितु मानवी के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा। इस सम्बन्ध में एक आलोचक की यह टिप्पणी है—"बंगमहिला की सम्पूर्ण सुकुमारता लेकर उषा देवी हिन्दी उपन्यास साहित्य की ओर आयीं और उन्होंने नारी की भावनाओं का बड़ा ही सजीव एवं कोमल चित्रण किया।"[1]

उपन्यासों में विद्यमान चेतना के स्तर पर महिला उपन्यासकारों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—पहला सन 1890 से 1960 तक और दूसरा सन् 1960 से आज तक। सन् 1890 से 1960 तक के अन्तराल में अपनी पहचान को स्थापित करने के लिए नारी ने साहित्य को अपना क्षेत्र चुना और इस क्षेत्र के द्वारा उसने अपनी योग्यता को स्थापित कर लिया। अपने उपन्यासों के द्वारा जिस प्रकार पुरुष उपन्यासकारों ने नारी का सूक्ष्म चित्रण किया, उसी प्रकार साठ से पूर्व महिला उपन्यास लेखिकाओं ने पुरुष चरित्रों की बाह्य एक मानसिक प्रवृत्तियों का सफल चित्रण किया है जो हिन्दी साहित्य को उनकी बहुत बड़ी प्रदेन माना जाएगा। प्रारम्भिक युग में कल्पनाप्रधान पौराणिक, ऐतिहासिक और आदर्शवादी चरित्रों का प्राबल्य दिखाई देता है। कुछ उपन्यासों में यथार्थवादी चरित्र भी आए हैं, किन्तु उनमें सुधारात्मक एवं उपदेशात्मक प्रवृत्तियों को ही अधिक स्थान मिला है साथ ही साथ जहां सुधारवादी प्रवृत्ति की प्रधानता थी, वहीं विकासकालीन उपन्यासों में उद्देश्य प्रधान और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। उन उपन्यासकारों ने चरित्रों में जहां उनकी वर्गगत और जातिगत विशेषताओं को प्रस्तुत करते हुए उन्हें "टाईप" का स्तर दिया, वहीं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा उनके व्यक्ति वैचित्र्य को भी प्रस्तुत किया गया।

प्रथम खण्ड की महिला उपन्यास लेखिकाओं के नाम और उनके उपन्यासों के नाम

---

1. हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य—प्रेम भटनागर - पृ. 281,

इस प्रकार हैं—

1. हेमन्त कुमारी चौधरी : उपन्यास : आदर्श माता
2. रजनी पणिकर : ,, : ठोकर, मोम के मोती, जाड़े की धूप, पानी की दीवार।
3. लीला अवस्थी : ,, : दो राहें
4. नारायणी कुशवाहा : ,, : पराये बस में
5. सुषमा भाटी : ,, : गेटकीपर
6. माया मन्मथनाथ गुप्त : ,, : मंझधार
7. कुंवर रानी तारा देवी : ,, : जीवनदान।

दूसरे वर्ग के सन् 1960 से आज तक हिन्दी उपन्यास साहित्य का विश्लेषण करने पर हमें ज्ञात होता है कि इस कालखण्ड में उपन्यास-लेखिकाओं की संख्या विगत कालखण्ड की अपेक्षा अत्यधिक रही है। उपन्यास क्षेत्र में पचास से भी अधिक उपन्यास-लेखिकाओं ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। इन लेखिकाओं ने एक सौ से भी अधिक उत्तम उपन्यास, हिन्दी साहित्य को दिये जो उसकी एक महानतम् उपलब्धि है। शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, मालती जोशी, मृदुला गर्ग, कान्ता भारती, दीप्ति खण्डेलवाल, कृष्णा अग्निहोत्री, लीला अवस्थी, शान्ति जोशी, रजनी पणिकर, मेहरून्निसा परवेज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कुछेक लेखिकाओं की साहित्यिक उपलब्धियों पर यहां चर्चा करना वांछनीय है।

शिवानी :

आज के उपन्यास के क्षेत्र में महिला लेखिकाओं का विशेष महत्व है, लेकिन बहुत कम लेखिकाएं सफलता प्राप्त कर पाती हैं, उन्हीं सफल लेखिकाओं में शिवानी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। उनकी कथा-कृतियां पूरे भारतवर्ष में लोकप्रिय हैं और उनका हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

शिवानी का जन्म राजकोट में हुआ, पर पर्वतीय समाज से उनकी विशेष सम्बद्धता है और वही उनकी रचनाओं में उजागर हुई है। उनके माता-पिता पर्वतीय समाज से सम्बद्ध थे। शिवानी पूरा नाम गौरापन्त शिवानी है। उनकी शिक्षा-दीक्षा अधिकांशत: विश्वभारती, शांति निकेतन में हुई।

सम्प्रति शिवानी लखनऊ में ही रहकर स्वतन्त्र लेखन कर रही हैं और सामायिक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं प्रकाशित होती रहती है। शिवानी का कथा साहित्य बहुत समृद्ध है। इनके उपन्यासों में 1. विषकन्या, 2. कृष्णकली, 3. मायापुरी, 4. भैरवी, 5. श्मशान चम्पा, 6. किश्नुलीला का ढ़ाट, 7. कैंजा, 8. गैंडा, 9. चौदह फेरे 10. माणिक, 11. रम्या 12. रति विलाप, 13. सुरंगमा उल्लेखनीय हैं।

शिवानी के उपन्यासों की कथावस्तु चरित्र प्रधान एवं घटना प्रधान है जो उनके निजी जीवन के अनुभवों पर आधारित है, तभी उनका प्रभाव पाठकों पर सीधे पड़ता है। वे नारी की समस्याओं को अनुभूति के आधार पर बड़ी कुशलता पूर्वक पाठकों के सम्मुख रखती हैं। उनकी रचनाओं में बंगाली कथा-शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। उनकी भाषा शैली बहुत सरल, दिल को छू लेने वाली है। महिला साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। है। सामाजिक विडम्बना, पाखण्डी, आडम्बरों पर सटीक उपमाओं के द्वारा व्यंग्य करते हुए अपने उपन्यासों में हास्य-विनोद का पुट देना शिवानी की अपनी विशेषता है।

कृष्णा सोबती :

हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं में कृष्णा सोबती का अन्यतम स्थान है। इनके उपन्यासों में एक खास, पंजाबी लहजा और तेवर दृष्टिगोचर होते हैं, नारी-जीवन के अंतरंग को पहचानने और उसके चित्रण में सोबती सिद्धहस्त हैं। लोक जीवन और उसके सांस्कृतिक परिवेश को रेशा-रेशा खोलने वाली, कला दृष्टि और हिन्दी उपन्यास साहित्य को नये रचनात्मक आयाम देती है—आपकी भाषा-शैली।

कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 में गुजरात-पंजाब (अब पाकिस्तान) में हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा दिल्ली, शिमला और लाहौर में हुई।

कृष्णा सोबती की प्रतिभा बहुआयामी है। यों तो लेखनारम्भ कविता से हुआ। बाद में कथा-लेखन में आपने पदार्पण किया। संस्मरण, कहानी, निबन्ध और साक्षात्कार आदि साहित्यिक विधाओं में अपने बहुचर्चित रचनात्मक कार्य किया जिसके लिए आपको सन् 1981 के साहित्य शिरोमणि से अलंकृत किया गया। 1. मित्रो मरजानी, 2. यारों के यार, 3. सूरजमुखी अन्धेरे के, 4. जिन्दगीनामा, 5. जिन्दा रुख, 6. डार से बिछुड़ी आदि आपके उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

"डार से बिछुड़ी" कृष्णा सोबती का बहुचर्चित उपन्यास है, जिसमें वस्तुतः परम्परा और रूढ़िग्रस्त समाज में जकड़ी हुई एक नारी के फिसलकर भटक जाने की कहानी है। एक ऐसे समाज में नारी-स्वभाव की तमाम कोमलताओं का शोषण होता है, उसका स्वातन्त्र्य कैसा दारूण है। उपन्यास की नायिका पाशो के रूप में यहां नारी-मन की भावात्मक तरलताओं, उसकी आशा-आकांक्षाओं और उसके नष्ट हो जाने पर हृदय में घुमड़ते निःशब्द हाहाकार का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

श्रीमती मन्नू भंडारी :

श्रीमती मन्नू भंडारी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न एक उपन्यास लेखिका है। स्वातन्त्र्योत्तर युग के उपन्यास लेखिकाओं में मन्नू जी का एक विशिष्ट स्थान है। वैसे उन्होंने कहानी, उपन्यास एवं नाटक आदि विविध विधाओं में साहित्य रचना की, परन्तु उपन्यास लेखिका रूप में ही आपको अधिक प्रसिद्ध मिली है साहित्य में मन्नू जी की एक अपनी पहचान है।

मन्नू जी का जन्म 3 अप्रैल 1931 में मध्य प्रदेश के भानपुरा नामक ग्राम के मारवाड़ी परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम श्री सुख सम्पत राय भण्डारी है और उन्हीं से

लेखन-संस्कार मन्नू जी को पैतृकदाय में प्राप्त हुए। एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद मन्नू जी ने कलकत्ता के एक विद्यालय में अध्यापन का कार्य किया। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री राजेन्द्र यादव से सन् 1954 में कलकत्ता में उनका अन्तर्जातीय विवाह हुआ। सम्प्रति मन्नू जी दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापिका हैं।

हिन्दी साहित्य जगत में मन्नू जी का पदार्पण कहानी लेखिका के रूप में हुआ और सर्वाधिक ख्याति इन्हें प्राप्त हुई। अपने कई पूर्ववर्ती एवं समवर्ती उपन्यासकारों के कृतित्व की तुलना में परिमाण की दृष्टि से उन्होंने कम लिख कर भी हिन्दी उपन्यासकारों में अब अपना निजी एवं विशिष्ट स्थान बना लिया है। आपके उपन्यासों में 1. एक इंच मुस्कान 2. आपका बंटी 3. महाभोज 4. स्वामी 5. कलवा। यद्यपि "एक इंच मुस्कान" उपन्यास श्री राजेन्द्र यादव और श्रीमती मन्नू भण्डारी ने सम्मिलित रूप में प्रस्तुत किया है, परन्तु इस उपन्यास की कथावस्तु स्वतन्त्र रूप से मन्नू जी की ही थी। यह उपन्यास एक प्रयोगात्मक कृति है।

उपन्यास "महाभोज" एक राजनीतिक उपन्यास है जो बहुत चर्चित रहा है। कहा जाता है कि इस उपन्यास ने हिन्दी की उपन्यास धारा में एक नये मोड़ को उपस्थित कर दिया। हिन्दी में आमतौर पर लिखे जाने वाले उपन्यासों से यह उपन्यास एकदम भिन्न है। यह उपन्यास हमारे देश के राजनीतिक जीवन में आए सांस्कृतिक अपकर्ष की कथा कहता है। उपन्यास लेखिका ने बिण्डा के माध्यम से विसंगतियों पर कड़ा प्रहार किया है। "उपन्यास में आदि से अन्त तक राजनीतिक, सामाजिक जीवन पर करारा व्यंग्य है।

वर्तमान भ्रष्ट राजनीति की नौटंकी में चलने वाले विभिन्न व्यापारों की झांकी इस उपन्यास में प्रस्तुत हुई है। शीर्षक भी सार्थक है, मूल्यों की गिरती लाश पर बेहया गिद्धों का "महा भोज।" बिसेसर की लाश का पाया जाना राजनीति के गिद्धों के लिए "महाभोज" का निमन्त्रण था, क्योंकि विधान सभा के उपचुनाव की घोषणा हो चुकी थी और वर्तमान मुख्य मन्त्री दा साहब और पूर्व मुख्य मन्त्री सुकुल बाबू दोनों ने इसे जीवन-मरण का प्रश्न बना डाला था। इन दोनों दिग्गजों की टक्कर में राजनीति की शतरंज के मामूली मोहरे भी गैर-मामूली हो उठे। इसी दांव पेंच के चित्रण में मन्नू भण्डारी ने सांस्कृतिक अवमूल्यन या नैतिक मूल्यों के ह्रास का पर्दाफाश किया है।

"महा भोज" उपन्यास के सम्बन्ध में स्वयं मन्नू भण्डारी की मान्यता है—"महाभोज" के बिसू और बिन्दा मेरे मन में दबी उस आकांक्षा के प्रति रूप हैं कि कोई तो हो जो चारों ओर फैले इस अन्याय और अनाचार के विरुद्ध आवाज उठाये। "महाभोज" का महेश आज की इस किताबी शिक्षा के खोखलेपन को लेकर मेरी मान्यता और आक्रोश का प्रतिरूप है।"

---

1. मन्नू भंडारी से साक्षात्कार : सृजन की मनोभूमि : डॉ० रणवीर रांग्रा : समकालीन साहित्य : समाचार : जनवरी 1996.

उपन्यासों की विशिष्ट प्रवृत्तियां :

उपन्यास एक जीवित सामाजिक संरचना है और उसके जीवित रहने का रहस्य है, उसका चरित्र-चित्रण-विधान। यह बात उल्लेखनीय है कि साठोतरी महिला उपन्यास लेखिकाओं में अधिकांशत: सभी लेखिकाओं ने चरित्र प्रधान उपन्यासों की ही रचना की है। इसमें परिवेश का विस्तृत चित्रण बहुत कम मिलता है इसका मुख्य कारण यह है कि नारी स्वभावत: अन्तर्मुखी होती है और उसका अनुभव-जगत पुरुष-अनुभव जगत की अपेक्षा बहुत सीमित होता है, लेकिन इसके कारण स्त्री को एक लाभ अवश्य मिल जाता है उसकी मानसिकता में संवेदना की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसलिए उसकी दृष्टि गहन मर्मभेदिनी और संवेदनशील होती है। इन लेखिकाओं ने अपनी इस निसर्गगत क्षमता का भरपूर उपयोग किया है। इन्होंने पुरुष चरित्रों का चित्रण अधिक से अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण से करने की चेष्टा की है।

साठोत्तरी उपन्यास में युगीन परिवेश में व्याप्त मूल्य-संक्रमण की स्थिति पूरे जोर के साथ उभर कर आई है। आर्थिक विषमता के आज के युग में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में कई जटिल स्थितियां उत्पन्न हो गई हैं। आर्थिक समानता ने सामाजिक समानता की संकल्पना को क्रियान्वय का ठोस आधार दे दिया है, आज स्त्री का नवार्जित अहं सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मुक्ति के आयाम खोल रहा है। ऐसे में परिवार की संरचना और उसकी समग्रता का टूटना एवं बदलना अनिवार्य है। ये सारे परिवर्तन स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों में घटित होते नजर आते हैं और फिर यही आज के महिला उपन्यासों के लिए मुख्य कथ्य है।

साठोत्तरी महिला हिन्दी उपन्यासों की यह विशेषता रही है कि प्राय: लेखिकाओं की सहानुभूति निम्नवर्ग के साथ जुड़ी हुई है। सदियों से चले आते मानवीय सम्बन्धों में स्त्री शोषित वर्ग में परिगणित हुई। रचनाकार की वर्ग-दृष्टि उसकी वर्ग-चेतना से निर्धारित होती है।

साठोत्तरी महिला उपन्यासों की वर्ग-दृष्टि के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसमें प्रमुखत: मध्यवर्गीय अनुभव और मानसिकता ही अभिव्यक्त हुई है। इसका कारण यह है कि ये महिला उपन्यासकार लगभग सभी मध्यवर्ग से आई हैं। वर्गातिक्रमण का साहस और क्षमता एकाध में ही दिखाई देती है। किन्तु जो उनकी सीमा है, उसी को अपनी सामर्थ्य बनाने की चेष्टा बहुतों ने की है और वह इस तरह कि अपने वर्ग अर्थात् मध्य वर्ग का गहरा और विस्तृत चित्रण इन्होंने किया है। अपने वर्ग के प्रति इन रचनाकारों की दृष्टि सहानुभूति पूर्ण और व्यंग्यपूर्ण दोनों प्रकार की है। इस तरह कुल मिलाकर इन उपन्यासकारों में मध्यवर्गीय त्रिशंकुवत् स्थितियां भी स्पष्ट हैं। स्पष्ट है कि इन महिला लेखिकाओं द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्रों में अधिकांशत: मध्य वर्ग से ही आए हैं और यह भी सच है कि इन्हीं के चित्रण में इन लोगों ने विशेष सफलता प्राप्त की है।

इस काल खण्ड के लगभग सभी उपन्यास चरित्र प्रधान हैं। प्रमुख पात्रों की चरित्रगत प्रवृत्तियों का विश्लेपण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महिला-लेखिकाओं में बीज रूप में स्थित पुरुष से प्रतिद्वन्द्विता का जो भाव है, विशेषकर सेक्स के स्तर पर वह

नैतिक बन्धनों का अतिक्रमण के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इसके साथ ही प्रतिशोधात्मक प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। अनेक उपन्यासों में स्त्री चरित्रों को पुरुष पात्रों के इस्तेमाल द्वारा अपनी प्रगति करते हुए दिखाया गया है। कुछेक लेखिकाओं जैसे कान्ता भारती, निरूपमा सेवती, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, दीप्ति खण्डेवाल किसी न किसी "एक्स्ट्रीम" पर नज़र आती हैं, जबकि मन्नू भण्डारी, मालती जोशी, जैसी लेखिकाएं सहज और सन्तुलित कर सकी हैं।

बीसवीं शताब्दी की महिला उपन्यास लेखिकाओं ने अपनी सृजन प्रतिभा के माध्यम से परम्परागत रूढ़ियों को नकारा है। अनेक लेखिकाओं ने नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों एवं पुरुषों की हिंसक प्रवृत्ति एवं उत्तरदायित्व हीनता के विरोध में संघर्षशील नारी का रूप चित्रित करने में यथेष्ट सफलता पाई है। परम्परागत रूढ़ियों के विरुद्ध इन लेखिकाओं ने नारी-विद्रोह का आह्वान किया है। नारी-क्रान्ति की चेतना एक विशिष्ट प्रवृत्ति रही है।

नवीन जीवन दृष्टि महिला उपन्यासों की अन्तिम एवं महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है। नारी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा हेतु संघर्ष करती हुई दृष्टिगोचर होती है। वह अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से अपने लिए स्वायत्तता की मांग का प्रश्न भी उठाती है। स्वायत्तता तो आज की प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की ही देन समझनी चाहिए। इस प्रकार नारी-उपन्यासों में क्रान्ति-चेतना क्रमेण विकसित होती गई है। आज के जटिलतापूर्ण एवं संघर्षपूर्ण मानव-जीवन की, महिला कृत उपन्यासों में सर्वांगीण अभिव्यक्ति हुई है, जो अपनेआप में एक महान उपलब्धि है।

अपनी रचना में इन उपन्यास लेखिकाओं की दृष्टि अपने स्त्रीत्व से प्रेरित रही है, अपने वर्ग से अनुशासित रही है, किन्तु इन सीमाओं को तोड़कर समग्र मानवीय अनुभव तक भी ये रचनाकार पहुंच सकी हैं। स्त्री, मानव की जैविक, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है। इस मान्यता को पुष्ट कर स्त्री का एक और रचना-संसार है जिसमें सदियों का इतिहास रहा है, अन्तर्द्वन्द्व, यातना और प्रतिहिंसा के सूत्र हैं। लेकिन साथ ही इस स्त्री अनुभव-संसार की सीमाओं को तोड़ कर व्यापक मानवीय अनुभव तक पहुंचने की आकुलता भी है।

यह निर्विवाद सत्य है कि स्त्री ने आज लेखन के द्वारा अपनी अस्मिता को प्राप्त कर लिया है। इस कारण स्त्री-लेखन मूलतः एक 'निषेध" "प्रोटेस्ट" या "नेगेटिव" दृष्टिकोण से की गई अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि अब तक उपलब्ध लेखन का एक नया तथा पूरक अंग है जो कि अतीत के समस्त अर्थहीन और अन्यायमूलक मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए स्वस्थ जीवन के प्रति एक सतत और अखण्ड आस्था से जुड़ा है। □

तेलुगु की स्त्रीवादी कविता

□ डा० पी. वी. नरसा रेड्डी

साधारणतः स्त्रियां कोमल तथा अधिक संवेदनशील होती है। इनके मन में श्रद्धा, विश्वास, भावुकता, सहानुभूति आदि कोमल भावों की अधिकता पाई जाती है। डा० सावित्री सिन्हा के अनुसार—"साहित्य रचना के लिए आवश्यक सृजन और निर्माण-शक्ति की विभूति तो नारी पुरुष की तुलना में काव्य के अधिक निकट मानी जाती है। भावनाओं की कोमलता और अभिव्यक्ति की कलात्मकता—दोनों ही नारी स्वभाव के प्रबल पक्ष हैं।"

तेलुगु काव्य-साहित्य इतिहास में, 15 वीं शती से कवयित्रियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। 15 वीं शती की ताल्लपाका तिम्मक्का ने 'सुभद्रा-कल्याणमु' नामक काव्य लिखा था। 15 वीं शती के आस-पास ही मोल्ला ने 'मोल्ल रामायणम्' का प्रणयन किया। 900 पद्यों में लिखित इस रामायण काव्य को विद्वानों ने प्रौढ़ काव्य माना। 16 वीं शती में रामभद्रांबा ने 'रघुनाथाभ्युदयमु', 18 वीं शती में मुद्दु पलनी ने 'राधिका सांत्वनमु' नामक शृङ्गार प्रधान काव्य, 19 वीं शती में तरिकुण्डा वेंकमांबा ने जो बाल-विधवा थीं, अनेक काव्यों की रचना की। इसी शती में एक और कवयित्री भण्डारु अच्चमांबा ने पहली बार विश्व की सुविख्यात महिलाओं का इतिहास लिखा था, जिन्हें संस्कृत, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं पर भी अधिकार था।

फिर 20 वीं शती के पूर्वार्ध में आधुनिक शिक्षा एवं विचार-धारा से प्रभावित होकर पुरुषों के समान युग-धारा के अनुकूल बसवराजु राज्य लक्ष्मी, चावलि वंगारम्मा, तल्ला-प्रगड़ विश्वसुन्दरम्मा आदि ने सुन्दर, ललित एवं कोमल काव्यों की रचना की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर सन् 1980 तक तेलुगु कथा-साहित्य में लेखिकाओं का योगदान पुरुषों से अधिक रहा है। इसकी पृष्ठभूमि में नगरीकरण, मध्यम वर्ग का विस्तार,

शिक्षा की व्याप्ति, इससे बढ़कर अनेक समाज-सुधार आंदोलन, अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

फिर भी उनके द्वारा चुने गए कथा-वस्तु केवल पारिवारिक समस्याओं, दहेज प्रथा, नौकरी, दांपत्य-जीवन तक ही सीमित रह गई हैं। लेखिकाओं की रचनाओं के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रोत्साहन भी मिलने लगा। वे धारावाहिक उपन्यास, कहानियां, पारिवारिक समस्याओं से सम्बन्धित छोटे-छोटे लेख सरस एवं सरल शैली में लिखने लगीं। इस समय की लेखिकाओं ने नारी-पाठकों की संख्या को बढ़ाने में अधिक चेष्टा की। इतना जरूर कहा जा सकता है कि तेलुगु में स्वतन्त्रोत्तर काल में, 1947 से लेकर 1980 तक उल्लेखनीय कवयित्रियों की संख्या बहुत कम थी।

अब तेलुगु में स्त्रीवादी कविता की पृष्ठभूमि में जिन सामाजिक एवं राजनीतिक-आंदोलनों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उनका संक्षिप्त परिचय कराना समीचीन होगा। आंध्र प्रदेश में स्त्री-शिक्षा, पुरुषों के समान अधिकार, विधवा-विवाह आदि अनेक समस्याओं के अंतर्गत ब्रह्मसमाजी कंदुकूरि वीरेशलिंगम् (1848-1919) ने कई आंदोलन चलाए थे। वे एक साथ महान् समाज-सुधारक, शिक्षाविद्, साहित्यकार और पत्रकार भी थे। नारी विमोचन के लिए उन्होंने साहित्य और पत्रकारिता को एक हथियार के रूप में उपयोग किया था। सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों पर उन्होंने कठोर अभियान चलाया था। आंध्र प्रदेश में सर्वप्रथम वीरेशलिंगम् ने लड़कियों के लिए पाठशालाएं खोलीं, विधवा-विवाह कराए, अनाथ-स्त्रियों के लिए अनाथ शरणालय खोले। बाल-विवाह, वेश्या-गमन और अन्ध-विश्वासों का इन्होंने कड़ा खडन किया। वीरेशलिंगम् जी के अनुयायियों ने भी नारी-जागरण की दिशा में सुधार-आंदोलन के साथ-साथ साहित्य के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिनमें रघुपति वेंकटरत्नम नायडु, गुरजाड़ अप्पाराव, मुट्नूरि कृष्णराव, कोंपेल्ला हनुमंतराव, पट्टाभि सीतारमय्या, अय्येदेवर कालेश्वरराव, उन्नव लक्ष्मीनारायण, चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, गुडिपाटि वेंकटचलम्, दुर्गाबाई देशमुख आदि ने उल्लेखनीय कार्य किया है।

समाज में स्त्री को समान अधिकार और अस्मिता दिलाने की दिशा में गुडिपाटि वेंकटचलम् ने साहित्य को अपना माध्यम बनाया। स्त्री-समस्या को अपना प्रधान कथ्य बनाकर उन्होंने अनेक क्रांतिकारी उपन्यास, नाटक, कहानियां आदि लिखीं। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था। अतः स्त्री के प्रति उनके उदार-विचारों का प्रभाव बहुत दूरगामी रहा। युवा वर्ग पर चलम् का प्रभाव आज भी अमिट है। इन्होंने धार्मिक, सामाजिक एवं परम्परागत अन्धविश्वासों पर कुठाराघात किया है। इसका प्रभाव अन्य लेखकों पर भी पड़ा। फलतः परवर्ती कथाकार सेक्स, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, प्रेम, स्त्रियों के आर्थिक स्वावलंबन आदि अंशों पर खुलकर लिख सके। इन परिणामों के कारण स्त्रियां अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक हुईं।

सुधारवादी आंदोलन के जरिए स्त्री-शिक्षा का विकास हुआ। स्त्रियों के लिए संचालित पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से स्त्रियों को अपने अधिकारों के बारे में सोचने-विचारने का मौका मिला। बाद में स्वतन्त्रता-आंदोलन में पुरुषों के समान अधिकार दिलाना एक

राजनीतिक मुद्दा बन गया। स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा-प्राप्ति के साथ विभिन्न स्तरों पर नौकरी पेशा स्त्रियों की संख्या बढ़ने लगी। इस तरह स्त्री चार दीवारी से बाहर निकल कर परिवार और सामाजिक परिस्थितियों का जायजा लेने लगी। उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं ने पाश्चात्य देशों के स्त्रीवादी आंदोलनों का अध्ययन-मनन किया। साथ ही देश में नागरिक अधिकारों के लिए आंदोलन जोर पकड़ने लगे। इसी पृष्ठभूमि के आधार पर 'स्त्रीवादी आंदोलन' समितियों का गठन होने लगा। 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक' (1975-1984) ने स्त्रियों को पुनः अपने जीवन के सभी पहलुओं पर सोचने-विचारने का सुअवसर दिया।

आंध्र प्रदेश में स्वतन्त्रता आंदोलन के बाद सन् 1946-52 में 'तेलंगाणा-सायुध किसान संघर्ष' में और उसके बाद सन् 1970 में चल पड़े नकसलवादी आंदोलन में स्त्रियों ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया। महिलाओं ने इन संघर्षों के अनुभव और परिवर्तित परिस्थितियों के प्रभाव से ठोस विचारधारा का निर्माण कर लिया और नारी जीवन को वस्तु बनाकर मुक्त-छंद में कविताएं लिखने लगीं।

स्त्रीवादियों का विश्वास है कि नारी सम्बन्धी समस्याए जैसे कि यौवन से जुड़े प्रतिबन्ध, वयसंधि, बच्चों का पालन-पोषण, प्रसव-पीड़ा आदि शारीरिक समस्याओं के साथ दहेज-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा-समस्या, घर और बाहर पुरुषों का आधिपत्य और शोषण सम्बन्धी समस्याओं पर वे खुद स्पष्ट और अनुभवपूर्वक अभिव्यक्त कर सकती है, जिनके बारे में पुरुष रचनाकारों की सोच सीमित और अनुभव शून्य होता है।

स्त्रीवादी कवयित्रियों का मंतव्य हैं कि पुरुष-प्रधान समाज में पुरुष स्त्रियों के श्रम, लैंगिकता, सन्तानोत्पत्ति की शक्ति को भौतिक रूप से और कूटनीतिक भाव-जाल से अपने नियंत्रण में रखते हैं और स्त्रियों की शारीरिक सुकुमारता और गर्भधारण को आलंबन बनाकर सामाजिक और नैतिक रूप से शोषण करते हैं।

तेलुगु में स्त्रीवादी कविता का प्रादुर्भाव सन् 1980 से माना जाता है। आजकल तेलुगु में स्त्रीवादी कहानियां, स्त्रीवादी उपन्यास और निबंधों के साथ-साथ स्त्रीवाद के पक्ष में ठोस विचार-धारा और सिद्धांतों पर विश्लेषणात्मक पुस्तक एवं पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि देखने को मिलते हैं। स्त्रीवादी कवयित्रियों में डा० जयप्रभा जिनके पांच काव्य-संग्रह प्रकाशित, कोण्डेपूडि निर्मला जिनके तीन काव्य संग्रह प्रकाशित और पुरस्कृत, पाटिबड्ला रजनी, विमला, सावित्री, मोक्कपाटि सुमति, आदूरि सत्यवतीदेवी, मंदरपु हैमवती, वाणी रंगाराव, माहजबीन, कुप्पिलि पद्मा, घंटसाला निर्मला, बी० पद्मावती, शांतिप्रिया आदि उल्लेखनीय हैं। उल्लिखित कवयित्रियों में अधिकांशतः एक या दो काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। स्त्रीवादी विचार-धारा के समालोचकों में ओल्गा, वसंत कन्नाभिरान, कात्यायनी विद्महे, रावि भारती, जयप्रभा आदि को आदर के साथ उल्लेख किया जा सकता है।

स्त्रीवादी कविताओं पर कुछ पुरुष आलोचक तीव्र आक्षेप प्रकट करते पाये जाते हैं। इनकी कविताओं को कुछ पुरुषों ने 'नीलि कवितलु' (ब्लू पोएम्स), 'मासिक' कविताएं आदि व्यंग्य उक्तियों से उपहास भी किया। पुरुषों के उपहास को स्त्रीवादी आलोचकों ने

तथ्यपूर्ण खंडन करने में सफल हुईं । उक्त आलोचकों के उपहास की प्रतिक्रिया में 'नीलि मेघालु' (नीले बादल) नाम से एक काव्यसंग्रह प्रकाशित किया गया है, जिसमें करीब 35 स्त्रीवादी कवयित्रियों की एक सौ कविताएं छापी गई हैं । इस पुस्तक का प्रकाशन अक्तूबर 1993 में हुआ है। स्त्रीवादी कवयित्रियों का प्रथम काव्य-संग्रह 1990 में त्रिपुरनेनि श्रीनिवास ने प्रकाशित किया है जिसमें 16 स्त्रीवादी कवयित्रियों की कविताएं छापी गई हैं।

स्त्रीवादी कविता के विरोधी पुरुष आलोचकों की संख्या से कहीं अधिक मात्रा में समर्थक पुरुष आलोचक भी हैं जिनमें चेकूरि रामाराव, पट्ठाभि, त्रिपुरनेनि श्रीनिवास, वेल्चेरु नारायणराव, जी० लक्ष्मीनरसय्या, अद्देपल्लि राममोहन राव आदि उल्लेखनीय हैं। इतना ही नहीं, आजकल अनेक पुरुष कवि भी स्त्रीवाद के अनुकूल कविताएं लिख रहे हैं। फलत: स्त्रियों के साथ-साथ पुरुष पाठक भी स्त्री समस्याओं पर सोच-विचारने और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगे हैं।

तेलुगु समीक्षक जी० लक्ष्मीनरसय्या के अनुसार स्त्रीवादी कवयित्रियां अपने विचारों को काव्य-रूप देते समय 75 प्रतिशत नाटकीय और स्वगत-कथन शैली में लिखती हैं। भाषा में शहरी जुबान और संवाद-पद्धति का अनुसरण करती पाई गई हैं। आरम्भ काल में स्त्रीवादी कवयित्रियों ने पुरुष कवियों का अनुसरण करते हुए उन्हीं की शैली अपनाई। बाद में स्त्री-जीवन से जुड़ी भाषा में अपनी नाराजगी और पीड़ा को स्त्री समस्याओं से जुड़े प्रतीक एवं बिंबों के माध्यम से चित्रित करने लगीं, जिनकी बातें और वर्णन अक्सर पुरुष-कवियों की अभिव्यक्ति से अलग हटकर निजी पहचान प्राप्त करती पाई जाती है। जहां तक भाषा का प्रयोग का सवाल है पवित्रता, कोमलता, मर्यादाओं का उल्लंघन पाया जाता है। शरीर के अंगों का विवरण एवं वर्णन अनिवार्य रूप से अभिव्यक्त होने लगा है।

पुरुष-प्रधान समाज में भ्रूण की दशा से लेकर जीवन की विविध दशाओं में स्त्रियों को जिन यातनाओं से गुज़रना पड़ता है, स्त्रीवादियों ने अपनी रचनाओं में सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

जन्म—जन्म तो चाहे पुरुष या स्त्री का हो अपनी इच्छा के अनुसार नहीं होता। लेकिन आज विज्ञान इतना विकसित हुआ है कि गर्भस्थ शिशु का लिंग निरुपण हो रहा है। फलत: यदि गर्भस्थ शिशु मादा हो तो गर्भपात के द्वारा भ्रूण की हत्या कर दी जाती है। इसके उदाहरण के रूप में जयप्रभा की ये काव्य-पंक्तियां उल्लेखनीय हैं :

○ गर्भ में पलते शिशु-दशा से लेकर स्त्रीत्व पर हत्या का प्रयास
इस धरती पर/पहली सांस लेते ही
मृत्यु पिता के शासन में/हलाहल हो बहती है
बढ़ती हुई हर दशा में/मरदाई नामक जंगली जानवर
डसता रहता है।

पालन-पोषण --इतनी सारी प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच पैदा हुई लड़की को एक औरत के रूप में अपने अनुकूल ढालने के लिए पुरुष-प्रधान समाज एक अनोखे ढंग से पालन-पोषण का आयोजन करता है। बचपन से लेकर मृत्यु तक पराधीन होकर पिता, पति और पुत्र के आश्रय में उसे जीना पड़ता है। 'निषिद्ध स्वप्नम्' देखिए :—

"जब मैं मां के (गर्भ में) संग रही/जो मुझे बहुत चाहती थी
पिता को जब पता चली मां की चाह/खींच कर झापड़ मारा मां के गाल पर
तब पता चला कि मैं कौन हूं/मैं एक स्त्री हू
मैं एक वर्जित-प्राणी हूं—
परसों तक मेरा हंसना मना था/कल तक पढ़ना मना था
आज तो मेरा जीना भी मना है"

भोग्या के रूप में—पूंजीवादी व्यवस्था में विनिमय-वस्तु के रूप में परिवर्तित होने के लिए स्त्रियों को अपनी वेश-भूषा, अलंकरण, शारीरिक-सौष्ठव पर विशेष ध्यान देना जरूरी होता है। इस दुष्ट व्यवस्था पर करारी चोट करती हुई विमला ने 'सौंदर्यात्मक हिंसा' शीर्षक कविता में अपनी प्रगतिशील विचार को इस प्रकार प्रकट किया है :—

"जहां सौंदर्य प्रतियोगिता बन
सौंदर्य एकमात्र उपभोग्य वस्तु रह जाता है,
चलो, इस सौंदर्य-व्यापार का बहिष्कार करें!
जहां सौंदर्य हमारा अस्तित्व का अहम बन जाता है तो
इस जीवन से भी उपहास करें!

⊙

जहां रंग नहीं लगा लेतीं और शरीर को
आंकड़ों से जकड़ा नहीं जाता
निरन्तर कठोर परिश्रम से होंठ फट जाते है
हथेलियों में छाले पड़ते हैं,/बाल बिखरे, थकी आंखें, चीथड़ों से
लिपटकर जहां सौंदर्य का सौदा/करने का प्रश्न ही नहीं उठता
उन करोड़ों औरतों के 'सौंदर्य साहित्य' को/हम प्यार से अपनाएंगी!
श्रम-सौंदर्य और मानव-मूल्यों को प्यार करेंगी!
जन-जन के लिए अद्भुत सौंदर्य का
सहज सौंदर्य भरित संसार का सृजन करेंगी।"

पारिवारिक जीवन—पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री के लिए विवाह अनिवार्य माना जाता है और पति को परमेश्वर। मायके में मां-बाप और भाइयों के कठोर-विधि नियमों के बीच पल बढ़कर जब वह पति के घर पहुंचती है तो उस पर पति का एकछत्र अधिकार, और ससुराल वालों की धौंस का शिकार हो जाती है। सावित्री की यह कविता इस दृष्टि से द्रष्टव्य है, शीर्षक है—'डकैत' :

"तभी लगा डर मुझे/सबक याद न करने के सबब
जब गुरु जी ने कहा मुझ से/अच्छा सबक सिखा दूंगा तुझे
तेरी शादी कर।
तभी मुझे हुआ शक/जब भाई ने कहा एक बार
जरूरत पड़ने पर भी छुट्टी नहीं देता/दफ्तर में बैठा मेरा खसम।
तभी मैं समझ गई/औरत मर्द सब ने लगाई एक ही रट
उसे क्या है ? मर्द जो ठहरा।
तभी मैं समझ गई/शादी माने है सख्त सजा
पति का अर्थ है स्वातंत्र्य-भक्षक।
तभी मैं समझ गई/जिन्हें हमने दूध अपना/पिला पिला कर पाला पोसा
उनमें से आधे/चला रहे हैं हम पर हुकूमत॥"

वैवाहिक-व्यवस्था स्त्री-पुरुषों के बीच असमान-सम्बन्ध पनपाने के लिए जमीन तैयार करती है। पति-पत्नी के सम्बन्ध को साथ-साथ चलने वाले दो कोल्हू के बैलों से इस प्रकार जोड़ती है, रेवती देवी अपनी कविता 'दूरम' में :

"दोहरे मूल्यों वाली पुरुष-प्रधान व्यवस्था में
बरसों से दांपत्य-जीवन बिताते हुए भी
पति और पत्नी रह जाते/एक दूसरे से अपरिचित
दो कोल्हू के बैलों की बीच की दूरी/जो दूर नहीं
वह नजदीकी केवल शरीरों के बीच ही है/
बंधन सिर्फ मंगल सूत्र का है।"

प्रसव-पीड़ा—नारी के जीवन में प्रसव जिन्दगी और मौत की समस्या बन जाती है। कोण्डेपूडि निर्मला ने 'लेबर-रूम' कविता में प्रसव-पीड़ा को दर्द भरे स्वर में इस प्रकार प्रकट की है :—

"टांगें फैलाकर दीन-सा, हीन-सा, नीच-सा
एक हिंसात्मक चरमोत्कर्ष के लिए इन्तजार करना

पटरी पर सिक्के को फैलाने जैसा है
शहतीर को चीरने वाले आरे के नीचे
बुरादे की तरह छल्ले बनना ही है"

प्रसव-पीड़ा नई सृष्टि का संकेत मात्र ही नहीं, उन लम्हों में मां को जितनी पीड़ा का अनुभव करना पड़ता है, उसका विश्लेषण उक्त कविता में मिलता है।

सामाजिक-जीवन—कल तक मध्यवर्गीय स्त्री की जिन्दगी का जुड़ाव सिर्फ घर की चार दीवारों तक सीमित था। आधुनिक काल में पढ़ाई के नाम पर या नौकरी के नाम पर या किन्हीं अन्य कारणों से उन्हें घर की चार दीवारी लांघ कर बाहर निकलना अनिवार्य-सा हो गया है। इस तरह बाहरी माहौल में कदम रखने वाली औरतों के साथ अनगिनत दुराक्रमण, बलात्कार, बेइज्जती, छेड़-छाड़, बहुत आम हो गया है। उनकी हर हरकत पर हज़ारों आंखों से समाज जासूसी करता रहता है और नीति-नियमों के परम्परागत बंधनों से मूल्यांकन करता रहता है। जयप्रभा ने अपनी 'नजरें' कविता में पुरुष-प्रधान समाज के दोगले मूल्यों पर इस प्रकार प्रहार करती है :—

"इस घने जंगल में/दिन हो या रात/कोई फरक नहीं पड़ता
नजरों से बचने के लिए/कहीं जगह नहीं मिलती/
सड़क पर/बसों, स्कूल, कालेजों में/कदम-कदम के पीछे
शरीर के किसी न किसी अंग को/घायल करतीं
जहरीली नजरें चुभती रहती हैं/कभी-कभी डर के मारे
सुदूर आसमान में, शून्य में/अदृश्य हो जाने को मन करता है
अब उन नज़रों का पीछा करने पर/आंखों से ही जंग लड़ूंगी
दो पल सीधे आंखों में आंखें डालूं तो/डरपोक नज़रें
पाताल में धंस जाती हैं/तब मैं सोचती हूं/सिर्फ आंखों पर ही नहीं
इस देश की औरत के/सारे बदन पर कांटे/
उग आने का दिन कब आएगा"

मध्य-वर्गीय शिक्षित युवतियां इस काव्योंदलन की हिमायती है। राज्य में दिन-प्रतिदिन विभिन्न क्षेत्रों एवं स्तरों पर महिला-संगठनों के आंदोलन जोर पकड़ते जा रहे हैं। कुछ हद तक स्त्रीवादी इन आंदोलनों से स्फूर्ति एवं प्रभाव ग्रहण कर कविताएं लिखी जा रही हैं। फिर भी स्त्रीवादी आलोचक डा० रावि भारती का यह वक्तव्य अत्यन्त उल्लेखनीय है— "लिंग-निर्धारण परीक्षा, गर्भपात, घर-गृहस्थी की चाकरी, वेश्या-समस्या, स्त्रियों के साथ

छेड़-छाड़ जैसी वस्तुओं पर कविताएं लिखने वाली स्त्रीवादी कवयित्रियों समाज में फैली हुई श्रमिक, खेतीहर-मजदूर औरतों की समस्याओं को भूल जाना खेद जनक है। ग्रामीण जीवन में गहरी गरीबी, मायूसी, अशिक्षा, अज्ञान, अन्ध-विश्वास, शराब-खोरी, बहु-पत्नीत्व, पतियों की हिंसा-प्रवृत्ति, आर्थिक एवं सामाजिक शोषण आदि पर कवयित्रियों का ध्यान खिचा हो, ऐसा नजर कम आता है। किसी भी सामाजिक इकाई में उन्हीं की समस्याओं को वास्तविक समस्याएं मानी जाती हैं जिस की संख्या अत्यधिक हो। जब बहु-संख्यकों की समस्याओं पर व्यापक दृष्टि अपनाई जाती है तभी स्त्रीवादी कविता-आंदोलन पूर्ण मानी जाती है।"

कुछ स्त्रीवादी कविताओं में पुरुषों के प्रति अतिशय आक्रोश पाया जाता है। उनके आक्रोश के पीछे अपने पिता या पति के द्वारा प्रताड़न एवं शोषण भी हो सकता है। फिर भी सभी पुरुष एक जैसे तो नहीं होते। अत: इन्हें संयम, व्यापक-दृष्टिकोण और वस्तु-स्थिति पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। पुरुष-प्रधान व्यवस्था के लिए वर्तमान पुरुष मात्र जिम्मेदार नहीं है। सदियों के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिणामों का प्रतिफलन है यह व्यवस्था। इसलिए रूढ़िग्रस्त विचारों से समाज को मुक्त कराने के लिए चौतरफा प्रयास जारी रखने की आवश्यकता है। □

त्रिलोचन की कविता में प्रेम

□ श्याम सुन्दर घोष

□ प्रेम का एक बिलकुल भिन्न रूप मिलता है त्रिलोचन में—वह भी अनेक ढंग से व्यक्त हुआ है। उनकी कविता में प्रेम दबे पांव चला करता है ठीक वैसे ही जैसे जाड़े का सूरज कुहरे में छिप कर आता है। प्रेम की यह दबी-दबी-सी आहट, उसकी हल्की पद-चाप त्रिलोचन की कविता में प्राय: सभी जगह है। हां, यह जरूर है कि उसे सभी नहीं पकड़ सकते। इसे तो वही पकड़ सकता है जो त्रिलोचन की कविता में गहरे गोते लगा सकता है। त्रिलोचन का भी कहना है "कुहरे में उषा कब आई, कब चली गई, नीला आकाश यदि कहे, कह सकता है।" तो क्या आकाश बोलता है, कहता है? उसे कहने की जरूरत नहीं। जो आकाश को पढ़ सकता है, उसके रंगों की परख कर सकता है, उसे उषा के आगमन का पता चल जायगा त्रिलोचन की कविता में भी एक आकाश है। उस आकाश में कुहरा है जो दुख का, कष्ट का, व्यथा का है जिसके बारे में त्रिलोचन ने लिखा है—

> सभी दिशाएं दु:ख से भरी हैं
> चले कहां प्राण डरे-डरे हैं
> न भावना है, न विकल्पना है
> न राह ही है, न उछाह ही है।

लेकिन ऐसे दु:ख और कुहरे भरे आकाश में भी उषा आती जाती रहती है। त्रिलोचन की कविता में उसकी हल्की चाप जगह-जगह अंकित है।

प्रेम का जो सबसे सहज और प्रचलित रूप है वह नारी के प्रति प्रेम है। यह त्रिलोचन की कविता में है पर उसका रूप बड़ा निर्मल और पवित्र है। आंखों की ज्योति और केशों की छांह के अलावा त्रिलोचन को और कुछ न चाहिए। उनकी यह कामना तो है कि और

थोड़ा और 'आओ पास।' लेकिन वे जानते हैं कि वे जिसे पास बुला रहे हैं उसका एक कठिन इतिहास रहा है जिसे वे प्रेम के क्षणों में सुनना नहीं चाहते। वे तो उसे अपना अनुरोध सुनने से भी मना करते हैं, बस चुप रहने को कहते हैं। ऐसे में प्रेम का व्यापार क्या चलेगा? लेकिन ऐसे में भी प्रेम पलता, बढ़ता और जीवित रहता है क्योंकि उसे विश्वास है 'कहेंगे सब कुछ तुम्हारे श्वास।'

त्रिलोचन के प्रेम में उनकी चेष्टा यह है कि वे प्रिय पात्र को देखते अघाते नहीं हैं। यह देखना निरन्तर देखते रहना, प्यासी आंखों से देखना, पीना यही उनका प्रेम है जबकि उनकी स्वीकारोक्ति है—'धारा है शिराओं में वेगवती प्रेम की।' ऐसे में इतना संतुलित और मर्यादित प्रेम त्रिलोचन का ही हो सकता है। अंचल और नरेन्द्र के प्रेम भाव और प्रेम चेष्टाओं से तुलना करने पर त्रिलोचन के प्रेम की विशेषता प्रकट होगी। त्रिलोचन की एक बड़ी छोटी-सी कविता है "उषा की आभा जल के भीतर घुलती है।" त्रिलोचन की कविता में प्रेम का रंग और अनुपात बहुत कुछ ऐसा ही है। वह पंक्तियों में घुला-घुला-सा है। आप उस पर उंगली नहीं रख सकते, उसे रेखांकित नहीं कर सकते, पर उसे महसूस जरूर कर सकते हैं।

पीड़ा :

त्रिलोचन पीड़ा को, न केवल अपने जीवन में वरन् अपनी कविता में भी पी-पचा गये हैं। लेकिन पीड़ाएं हैं बे-हिसाब। "और जब पीड़ा बढ़ जाती है बे-हिसाब। तब जाने अनजाने लोगों में जाता हूं। उनका हो जाता हूं। हंसता हंसाता हूं।" जब वे उदास हो जाते हैं तो कोकिल से कहते हैं—"गाओ। आम की डाल सुहाए सुहाए तो वहां। कचनार तुम को लुभाए तो वहां, जाओ, जाओ।" यह अकेले होने की कामना भी त्रिलोचन में कहीं-कहीं है जो कि यह अकेलापन इस अर्थ में अकेलापन नहीं है जिस अर्थ में हिन्दी के अधिकांश कवियों में यह है। त्रिलोचन की पंक्ति से भी यह स्पष्ट है—"प्रेम में अकेले भी हम अकेले नहीं है।"

जैसे प्रेम में हम अकेले होकर भी अकेले नहीं होते, वैसे ही प्रेम में हम कभी-कभी समूह में रह कर भी समूह नहीं होते, अकेले होते हैं। यह भी त्रिलोचन ही अनुभव कर सकते हैं और कहने का साहस भी कर सकते हैं। उनकी पंक्तियां हैं—

प्यार का प्रवाह जब किसी दिन आता है
आदमी समूह में अकेले गुनगुनाता है
किसी को रहस्य सौंप देता है
उसका रहस्य आप लेता है।

यह जो रहस्यों का आदान-प्रदान है यह प्रेम में आत्मीयता और विश्वास का सूचक है। त्रिलोचन मानते प्रतीत होते हैं कि प्रेम में समूह बाधक नहीं है। समूह में रह कर भी हम प्रेम करने को, और प्रेम करने को ही क्यों अपनी सभी व्यक्तिगत आकांक्षाओं को व्यक्त

और तृप्त करने के लिए स्वतन्त्र हैं। समूह को इस रूप में कम ही देखा गया है। समूह में केवल नारे लगाये जाते हैं, केवल विजय-घोष होता है, ऐसा नहीं है। समूह में सभी अकेले-अकेले भी गुनगुना सकते हैं और एक दूसरे उनकी गुनगुनाहट को सुन कर उसके रहस्यों को भांप कर मुस्करा सकते हैं, उसमें हिस्सा वंटा सकते हैं। समूह के सम्बन्ध में यह स्वतन्त्र कल्पना है त्रिलोचन की। यह समूह बांधता नहीं, मुक्त करता है।

त्रिलोचन का प्रेम स्थिर प्रेम नहीं है। यह न तो खिड़की का प्रेम है, न घर कमरे-ड्राइंग रूम का और न बाग बगीचे का। वह तो चलता-फिरता प्रेम है, राहों का राही और मुसाफिर। ऐसा प्रेम बंध कर रहता। स्वयं त्रिलोचन की पंक्तियां हैं—"प्रेम व्यक्ति-व्यक्ति से। समाज को पकड़ता है। जैसे फूल खिलता है। उसका पराग किसी और जगह पड़ता है।" त्रिलोचन के प्रेम का यह प्रभाव कहां-कहां तक और कैसा है, यह ढूंढ़ना-जानना उपयोगी और रोचक हो सकता है। एक उदाहरण लें—

पवन/शाम बीतने पर
बंस वारी में/छिपकर आता है
बांसुरी बजाता है/रुक-रुक कर
बांसुरी बजाता है
नीम फूलों की
हरी भरी सुगन्ध पिये।
रात/मौन रहती है
बांसुरी की तान सुना करती है।

इस कविता को आप क्या कहेंगे? क्या यह प्रकृति-वर्णन है? मैं तो इसे प्रेम कविता कहता, मानता हूं। त्रिलोचन की अधिकांश प्रेम कविताएं ऐसी ही है। उनका प्रेम व्यक्ति से समूह की ओर तो जाता ही है प्रकृति की ओर भी कुछ कम नहीं जाता बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि वह प्रकृति को देख उसकी ओर दौड़ पड़ता है। त्रिलोचन जब वातावरण का चित्रण करते हैं, और उसमें ऐसी पंक्ति आती है—'सांझ गुलाबी। कांप रही है ठंड से' तो यह निरा वर्णन नहीं है। उसके पीछे प्रेम की एक अन्तर्धारा है। इसी प्रकार जब झूल झूल कर फूल हवा से कह रहे हैं यह इतनी छेड़छाड़ अच्छी नहीं।" तो यहां भी प्रेम की एक पहचान है। जाड़े की धूप में मेमनों का फुदकना, जड़ से बंधी आंखें मूंदे शाम का घमौनी करना, लू की उमड़ती हुई लहरें झेलना कत्थई महुआ, यह सब त्रिलोचन के प्रेम को कई-कई रूपों में प्रकट करता है। और तो और जब लाल-लाल, कोमल-कोमल रोमल-रोमल महुए के छोटे-छोटे दल निकल आते हैं और इस लाल सोते के अजस्र आवेश से पृथ्वी का शून्य अंक भर जाता है, तो लू तो चलती है, पर उन्हें छूकर लजा जाती है। लू का ऐसा वर्णन शायद ही किसी भारतीय कवि ने किया है। लू का यह हृदय-परिवर्तन शायद प्रेम के कारण ही हुआ है। त्रिलोचन अपनी कविता में प्रेम के संस्पर्श से बहुधा अनेक कठिन और कठोर का कायाकल्प करते नजर आते हैं त्रिलोचन की करौंदे की अरण्यवी

जब आकाश से कहती है—

देखो तुम्हारे पास जितने तारे हैं
मेरे पास फूल हैं
मेरे फूलों की भाषा सुवास है।

तो वह भी अपनी प्रेम-सम्पदा की ओर ही इशारा करती हैं। प्रकृति की ऐसी प्रेम-सम्पदाओं से मनुष्य का प्रेम समृद्ध हो सकता है, त्रिलोचन ऐसा संकेत सर्वत्र देते हैं। तभी तो "पृथ्वी से दूब की कलाएं लो...उषा से हल्दिया तिलक लो और अपने हाथों में अक्षत लो पृथ्वी आकाश। जहां कहीं तुम्हें जाना हो बढ़ो..." यह त्रिलोचन की कामना, शुभकामना है। वे जीवन-यात्रा को प्रायः प्रेम-यात्रा के रूप में ही लेते हैं।

त्रिलोचन के प्रेम में उस प्रेम का भी एक बड़ा हिस्सा है जिसे हम जनता के प्रति प्रेम कहते हैं। यहां ध्यान देने की बात यह है कि त्रिलोचन पारम्परिक भारतीय जन से भी उतना ही प्रेम करते हैं जितना प्रगतिशील या प्रगतिवादी कवि जनता से करता है। उनका यह प्रेम महा कुम्भ विषयक सॉनेटों में अच्छी तरह प्रकट हुआ है। महाकुम्भ में आई हुई भारतीय जनता को कोई दकियानूसी भारतीय जनसमूह कह कर अवज्ञा की दृष्टि से देख सकता है, पर त्रिलोचन ऐसा नहीं करते। वे इसे उसके सभी दोषों, अन्तर्विरोधों के साथ स्वीकार करते हैं, केवल स्वीकार ही करते—

"जनता का समुद्र वह देखा, शीश झुकाया
तभी सहस्त्र शीर्षा पुरुषः याद आ गया
उन आंखों को देखा सहस्राक्षः गाया
चरणों को देखा तो सहस्रपात छा गया
प्रतिबिंबित होकर मानस में, मुझे भा गया,
वह विराट दर्शन मैंने विश्वास पा लिया।

पारंपरिक भारतीय जनता को इस रूप में कम ही कवियों ने स्वीकार किया है यहां तक कि नागार्जुन ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—कुम्भ के मेले में

तीर्थराज प्रयाग की ओर अभिमुख
लाखों-लाख की शतानुशतिक भेड़िया धसान भीड़
लगा-लगा कर डूब संगम के जादुई जल में
वापस आ जाती है अपने-अपने ठौर पर।

तथाकथित प्रगतिवादी और जनवादी इस प्रकार की जनता को साम्प्रदायिक जनता कहते हैं। लेकिन त्रिलोचन ऐसा नहीं मानते। वे इस प्रकार की जनता में भी एक विशेष

प्रकार के धार्मिक जीवन को अनुभव करते हैं। उनकी तो संकल्पना है—

जहां-जहां जीवन को देखा वहां जी लिया,
मेरे स्वर जीवन की परिक्रमा करते हैं।

× × ×

महाकुम्भ में देखा मैंने मानव, कानन,
मानचित्र था भारत का रेखांकित आनन।

इस जनता में वे उस अविजेय ऐतिहासिक जनता को भी उपस्थित पाते हैं जिसकी जिजीविषा का कोई ओर-छोर नहीं है—

गिरि-गह्वर कंदरा-गहन-वन-झाड़ झाड़ियां
सर-सरिता-निरवात-सागर-कासार-खाड़ियां
कहां मनुष्य नहीं पहुंचा है, पृथ्वी तल में
खान खोदकर जा पैठा, दुर्गम पहाड़ियां
उसे सुगम है सारा व्योम नाप दे पल में

○

आने दो यदि महाकुम्भ में जन आता है,
कुछ तो अपने मन का परिवर्तन पाता है।

भारतीय जन की विविधता, उसकी सहनशीलता, उसका समर्पण-भाव, नागाओं का नंगा नाच और चिमटा, हौदा कसे हाथी, सजे हुए घोड़े, ऊंट, वेश-रचना, विरागियों का जुलूस और जलसा, अरघड़ा, भीड़-भड़क्का, सतुआ और पिसान बांध कर कुम्भ-नहाने आये, नर-नारी, कथा-कहानी, पछुआ की लहरें, यज्ञ, पाठ, दान आदि के वर्णन तो हैं ही—

कहीं कुचाल देखकर हृदय काठ होता था
कहीं अनीति देख कर मर्मव्यथा होती थी
कहीं लाभ के लिए लूट सी मची हुई थी
कहीं ठगी छल बल से नई प्रथा होती थी।

जैसे वर्णन भी हैं। इसी महाकुम्भ में जब भयंकर नर संहारक दुर्घटना हुई, और हजारों हजार लोग मरे, तो कवि की शोकोक्ति है—

मृत्यु अकेली भी तो बेध-बेध जाती है,
सामूहिक से छाती छलनी बन जाती है।

जब लाशों की ढेर से गुजरते पंडा रामप्रसाद कहते हैं—

शंकर, शंकर, शंकर यह तो नहीं बोलता
यह क्या किसके ऊपर मेरा पांव पड़ गया

बड़ा पसीना छूट रहा है, वह न खोलता
यदि थोड़ा फोकट पा जाता, व्यर्थ लड़ गया
पास खड़े मुर्दों-से, वह आवेश झड़ गया।

तो पंडा जी की दशा का अनुमान कर हंसी रोकनी मुश्किल है। इस हंसी के साथ भय और करुणा का मेल भी दर्शनीय है। और जो प्रच्छन्न व्यंग्य है वह कितना महीन और चुटीला है—

क्या करने आये थे क्या असहाय कर चले,
धरा धाम से गये तीर्थ का यही फल मिला।

महा कुम्भ (1953)—नर संहार की स्मृति कवि को निरन्तर मथती रही। उस संदर्भ में पुलिस, राजनेता, अधिकारी आदि की जो भूमिका रही उसने भी कवि को बहुत व्यथित किया था। उसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

महामरण का चंड गदाभिघात झेला था
मूक देश ने दुःशासन का याद आज भी
हूक जगा देती है, पांव तले ढेला था
कड़ा नुकीला मानो, अगर स्वतंत्र राज्य भी
जनता की जीवन-रक्षा का प्रथम काज भी
न कर सके तो किस मतलब के लिए राज है?

कवि ने स्वतन्त्र भारत के अधिकारियों को इस रूप में देखा है—

इन्द्र, वरुण, कुबेर से अधिकारी छाये थे
शिविर सजे थे, धूलि कहां उनको लगती थी
खुद आये थे, अपनी ऐंठ अकड़ लाये थे।

पुलिस की भूमिका और सोच का पता इन पंक्तियों में है—

जनता का क्या? वह तो मर मर कर जीती है
अधिकारी की ठोकर से पक्के घर ढहते हैं
जनता रहती है, कौन अमृत पीती है।

साहित्यकारों की भूमिका भी कोई अच्छी न थी—

यह क्या रंग-ढंग है, मानवता थोड़ी सी
आज दिखा दी होती "वे साहित्यकार हैं"।
कहा किसी ने, औरत बोली झल्लाई-सी
"बादर होई पहाड़ होइ अपना कपार हैं।"

झल्लाई औरत ने यहां साहित्यकारों का जो मूल्यांकन किया है उससे मिलता-जुलता मूल्यांकन त्रिलोचन का भी है—

जीवन से अनजान रहे, पर गाना गाया
जन का, जीवन का, लेकिन दुनिया का होके
दुनिया में न रहें, दुनिया को बुरा बताया
उससे तन बैठे जिसने कुछ दोष दिखाया

इस प्रकार त्रिलोचन साहित्यकारों को भी उसकी कद बता देते हैं और अपना मत इस प्रकार रखते हैं—

जीवन जिस धरती का है कविता भी उसकी
सूक्ष्म सत्य है, तप है, न ही चाय की चुस्की।

यह अकारण नहीं है कि 'धरती' और दिगन्त' से अपने कवि जीवन की शुरुआत करने वाले त्रिलोचन नाना रूपों, नाना स्वरों में जीवन और धरती का ही प्रेम गीत गाते हैं। उनकी कविता की नसों में वही रक्त है जो सदा जीवनानुरक्त है । इस रूप में त्रिलोचन का प्रेम बड़ा व्यापक जन-प्रेम और प्रकृति प्रेम है ।

□

रूप-प्रतिरूप

वैरागी सुभाष

(नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की जन्मशती पर विशेष)

□ भगवान देव 'चैतन्य'

'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा' के उद्घोषक स्वतन्त्रता के युद्धवीर नेता जी मूलत: आध्यात्मिक व्यक्ति थे । नेता जी सुभाषचन्द्र बोस जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था पर मूलतः वे एक आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे एक वार सन्यासी वनने के लिये घर से निकल भी पड़े थे पर सम्बन्धी उन्हें जैसे कैसे वापस घर ले आए थे। भले ही वे घर लौट आए पर वह साधुपन सदा हमें उनके जीवन में झलकता हुआ दिखाई देता है । हम यहां उनके पत्रों के माध्यम से उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का आकलन करना चाहेंगे। भले ही सन्यास लेने के मार्ग में बाधा आ गई थी पर वे सन्यासी होने को गौरव की बात समझते थे। श्री चारूचन्द्र गांगुली को वे अपने पत्र में लिखते हैं—'सन्यासी कहने से मुझे दु:ख नहीं होता। मैं सन्यासी नाम के अयोग्य हो सकता हूं परन्तु सन्यासी कहने से अब भी मैं पहले के समान गौरव अनुभव करता हूं।' सन्यासीपन के भाव उनके हृदय में इतने गहरे थे कि अपनी मां को वे अपने 15-10-27 के पत्र में लिखते हैं—'मैं कई दिन से सोच रहा हूं कि मुझे ही इतना सिर दर्द क्यों है? मैं क्यों भूत का सा यह बोझ ढोता फिरूं? राज-नीति का क्षेत्र मेरे लिए उपयुक्त कर्म क्षेत्र नहीं है, मैं तो घटना चक्र के कारण राजनीति के भंवर में आ फंसा हूं। इस स्थिति में मैं भी अपने उपयुक्त कर्म क्षेत्र में लौट सकता हूं। संसार में मेरी आसक्ति नहीं है इस कारण मैंने गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश ही नहीं किया। क्या मैं देश की वर्तमान दशा में शांति का मार्ग छोड़कर नए सिरे से संसार जाल में लिप्त होऊं? कुछ समझ में नहीं आता।'

यह असमंजस की स्थिति कोई बाहर से ओढ़ी हुई नहीं थी बल्कि भीतर से वे सदा विरक्त ही रहे। सन्यासी बनने के उनके पास ठोस आधार थे। अपने पिता को उन्होंने

इस सम्बन्ध में तर्क दिए थे जिन का उल्लेख उन्होंने श्री हेमन्तकुमार सरकार को लिखे पत्र में किया है—'मध्यान्ह में पिता जी से फिर बहुत-सी बातें हुई ? अनेक विषयों पर बातें हुई। सन्यासियों के दर्शन के सम्बन्ध में, और भ्रमण के सम्बन्ध में। मेरी बातें किसी को भी नहीं रूचीं। मेरे आदर्श के सम्बन्ध में भी बातें हुई। सम्पूर्ण वाद-विवाद में जो कुछ वह कहना चाहते थे उसका सार यह है—(1) संसार में रहते हुए धर्म का पालन किया जा सकता है या नहीं ? (2) क्या त्याग के लिए साधना की आवश्यकता है ? (3) क्या कर्त्तव्य को त्याग देना उचित है ? मैंने उत्तर दिया—(1) सब रोगियों को एक ही औषधि रोग मुक्त नहीं कर सकती, क्योंकि सब लोगों की शक्ति एक-सी नहीं होती और न ही सब एक रोग के रोगी होते हैं। (2) त्याग करना व्यक्ति के संस्कार पर अधिक निर्भर है—सब के लिए कष्टप्रद साधना आवश्यक नहीं है। सब व्यक्तियों की सहनशक्ति समान नहीं होती। आध्यात्मिक प्रेरणा मिलने पर सांसारिक कर्त्तव्य और सम्बन्ध पीछे छूट जाते हैं। वास्तविक ज्ञान प्राप्त होते ही कर्म क्षीण हो जाते हैं। उन्होंने पूछा—क्या 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' का अद्वैत ज्ञान केवल एक सिद्धांत है या सत्य है ?

—जब तक मुख से उच्चारण किया जाए तब तक तो यह सिद्धांत है, परन्तु जब अनुभूति की जाती है तब वास्तविक तथ्य है। जिन्होंने यह बात कही उन्होंने इसकी अनुभूति की थी और कहा कि हम अद्वैत की अनुभूति कर सकते हैं। अद्वैत ज्ञान की अनुभूति किसने की थी और इसका प्रमाण क्या है ?

—ऋषियों ने अनुभूति की और प्रमाण में मैंने यह श्लोक उद्धृत किया—'वेदाहमिति।'

सुभाष जी के इन उत्तरों से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस आयु में भी उनकी आध्यात्मिक पैठ कितनी सटीक और व्यावहारिक थी। उनकी आध्यात्मिकता का आधार केवल बाह्याडम्बर नहीं बल्कि भीतरी अनुभूति के स्तर पर था। बाह्यआडम्बरों के बारे में अपनी वेदना उन्होंने माता ठकुरानी को रांची से लिखे पत्र में इस प्रकार व्यक्त की है—'मां', क्या केवल देश की ही शोचनीय दशा है ? देखो, भारत के धर्म की क्या दशा है ? कहां वह पवित्र सनातन हिन्दू धर्म और कहां हमारा यह पतित आचरण ? कहां वह पवित्र आर्यकुल जिस की चरणरज लेकर यह धरती पावन हो गई और कहां हम पतन के गर्त में गिरे हुए उनके वंशधर ? क्या यह पवित्र सनातन धर्म लोप होने वाला है ? देखो चारों ओर नास्तिकता, अविश्वास, पाखण्ड का साम्राज्य है। इसीलिए लोगों को इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है। उस धार्मिक आर्य जाति के वंशधर अब विधर्मी और नास्तिक हो गए हैं। जिसका नाम, गुण कीर्तन और ध्यान ही जीवन का एकमात्र ध्येय था, उस भगवान का नाम भक्ति सहित एक बार भी लेने वाले लोग बहुत कम रह गए हैं। मां, यह दशा देखकर और इस सम्बन्ध में सोच कर क्या आपका मन रो नहीं उठता ? आपके नेत्र सजल नहीं हो जाते ? मां एक बार आंखें खोलकर देखो कि आपकी सन्तान की क्या दशा हो गई है। पाप से, ताप से, अन्न के प्रभाव से, प्रेम के अभाव से, और द्वेष तथा स्वार्थ में लिप्त रहने के कारण और सर्वाधिक धर्म के अभाव से वे नरक की अग्नि में निशिदिन जल रहे हैं। पवित्र सनातन धर्म की क्या दशा हो गई है ? वह धर्म, पवित्र धर्म अब लोप होने वाला है।

अविश्वास, नास्तिकता, कुसंस्कार में हम लिप्त हैं। हम कितने पतित हो गए हैं, भ्रष्ट हो गए हैं। इसके अतिरिक्त आजकल धर्म के नाम पर अधर्म को प्रश्रय मिल रहा है। तीर्थ स्थानों पर कितने पाप होते हैं ? देखो जगन्नाथ जी के पण्डाओं की कितनी भीषण स्थिति है, छि:-छि:-छि: । प्राचीनकाल के उन पवित्र ब्राह्मणों को देखो और फिर देखो आजकल के पापी ब्राह्मणों को। आजकल जहां धार्मिक कृत्य होते हैं वहां भी पाखण्ड और अधर्म का बोलबाला है। हाय-हाय हमारी कैसी दुर्दशा हो गई है। हमारे धर्म की कैसी दशा हो गई है।

क्या ये सब बातें आपको व्याकुल नहीं करती ? आपको मर्मवेदना नहीं होती ? क्या हमारा देश दिन-प्रतिदिन पतन के गर्त में गिरता जाएगा ? क्या भारत माता की एक भी सन्तान अपने स्वार्थों को तिलांजलि देकर मां के लिए अपना जीवन उत्सर्ग नहीं करेगी ? मां ! हम और कब तक सोते रहेंगे ? हम कब तक निर्जीव खिलौनों की भांति देखते रहेंगे ? क्या भारत माता और सनातन धर्म का रुदन हमें सुनाई नहीं देता ? क्या वह रुदन हमें व्यथित नहीं करता ?

हम कब तक हाथ पर हाथ धरे धर्म की यह दुर्दशा देखते रहेंगे ? हमें अब जागना चाहिये। आलस्य त्याग कर कर्म क्षेत्र में उतरना चाहिए। परन्तु दुःख तो इसी बात का है कि क्या इस स्वार्थपूर्ण युग में मनुष्य अपना स्वार्थ त्याग कर भारत मां की सेवा करने को तत्पर होंगे ? चौरासी लाख योनियों के पश्चात यह मनुष्य जन्म, दुर्लभ मानव देह प्राप्त हुई है। बुद्धि विवेक और आत्मा प्राप्त हुई है। परन्तु इन सब को पाकर भी यदि पशुओं के समान केवल आहार-निद्रा में व्यस्त रहे और धर्महीन जीवन व्यतीत करते रहे, पशुओं के समान इन्द्रियों के दास बने रहे, अपने-अपने स्वार्थों में लिप्त रहे तो इस मानव देह प्राप्ति से क्या लाभ ? धर्म और देश के लिए जीवित रहना ही यथार्थ जीवन है।'

परमात्मा तो हमारे अंग-संग है मगर हम कभी सच्ची श्रद्धा से उसे पुकारते ही नहीं हैं। वह तो मानों चुम्बक की तरह निरन्तर हमें अपनी ओर आकर्षित करता रहता है मगर हम विषय वासनाओं में ही पड़े रह कर उसे निरन्तर विस्मृत किए रहते हैं। इस तथ्य के बारे में नेता जी ने अपने मंझले दादा को दिनांक 8-1-13 के पत्र में लिखा—'ईश्वर ही मूल शक्ति है। उसी के चारों ओर यह सृष्टि परिक्रमा कर रही है। हमें प्रगति करनी ही होगी। पथ कंटकाकीर्ण हो सकता है, यात्रा कष्टप्रद हो सकती है, किन्तु हमें चलना ही होगा। हो सकता है वह दिन देर में आए, परन्तु आएगा अवश्य। यही मेरी एकमात्र आशा है। क्या हम अनुभव नहीं करते कि ईश्वर हमें उसी प्रकार अपनी ओर आकर्षित करता है जैसे चुम्बक लोहे को। मेरा विचार है कि हम अनुभव अवश्य करते हैं। उसने हमारे चारों ओर प्रकृति के अनेक रूप प्रस्तुत किए हैं जिससे हमें उसकी सत्ता का ज्ञान हो जाए। अनन्त आकाश और असंख्य नक्षत्र हमें उसका स्मरण दिलाते हैं। वह तो करुणामय है, हम ही अधम हैं, पापी हैं।'

परमात्मा हमें सहजत ही मिलने वाला नहीं है। यह ठीक है कि वह चुम्बक के समान हमें अपनी ओर आकर्षित कर रहा है मगर जब तक हम अपने विषय वासना रूपी कीचड़ को मुक्त नहीं करते हैं तब तक वह चुम्बक हमें भला कैसे खींच सकेगा। इसलिए

नेता जी ने व्यवहारिकता पर विशेष ध्यान दिया है। इसलिए उन्होंने माता ठकुरानी जी को एक पत्र में लिखा—'जिन की हम पूजा करते हैं उन्हें तो हृदय में स्मरण करना ही पर्याप्त है। जिस पूजा में भक्ति चन्दन और प्रेम कुसुम का उपयोग किया जाए वही पूजा जगत में सर्वश्रेष्ठ है। आडम्बर और भक्ति का क्या साथ ? 'उनका आशय स्पष्ट है कि भक्ति और प्रेम के द्वारा ही हम अपने आराध्य को प्राप्त कर सकते हैं मगर उसके लिए भी अपने आप को परिष्कृत करने की आवश्यकता है। धीरे-धीरे अपने दोषों को दूर करके हमें सद्गुण धारण करने होंगे। अपने जीवन की धारा को मोड़ देना होगा। इस सम्बन्ध में नेता जी ने श्री हरिचरण बागची को मांडले जेल से लिखे पत्र में बहुत सुन्दर ढंग से उनका मार्गदर्शन किया है—'तुम्हारे मन की वर्तमान अशांति का क्या कारण है, चाहे यह बात तुम्हें मालूम न हो, परन्तु मुझे उसका ज्ञान है ! केवल काम करने से ही आत्म-विकास सम्भव नहीं है। दैनिक कार्यों के साथ-साथ, लिखने-पढ़ने और ध्यान-धारणा की भी आवश्यकता पड़ती है। किसी कार्य में सफलता अथवा असफलता से जो अहंकार एवं निराशा मिलती है उनका उन्मूलन करके, मनुष्य को संयत बनाने के लिए, अध्ययन एवं मनन ही एकमात्र उपाय है। मनुष्य में तभी आंतरिक अनुशासन आ सकता है। आंतरिक संयम न होने पर बाह्य संयम स्थाई नहीं हो सकता। नियमित व्यायाम से जिस प्रकार शरीर का विकास होंता है ठीक उसी प्रकार नियमित साधना से सद्वृत्तियों का उद्भव और वासनाओं का नाश होता है। साधना के दो उद्देश्य हैं—(1) वासनाओं का नाश करना, विशेषत: काम, भय और स्वार्थपरता पर विजय प्राप्त करना। (2) प्रेम, भक्ति, त्याग, बुद्धि आदि का विकास करना।

काम पर विजय प्राप्त करने का प्रमुख उपाय है सब स्त्रियों को मातृरूप में देखना और स्त्री मूर्तियों जैसे दुर्गा, काली भवानी का चिन्तन करना। स्त्री मूर्ति में भगवान या गुरु का चिन्तन करने से मनुष्य शनै:-शनै: सब स्त्रियों में भगवान के दर्शन करना सीखता है। उस अवस्था में पहुंचने पर मनुष्य निष्काम हो जाता है। इसीलिये महाशक्ति को रूप देते समय हमारे पूर्वजों ने स्त्री मूर्ति की कल्पना की है। व्यवहारिक जीवन में सब स्त्रियों को मां रूप में सोचते-सोचते मन शनै:-शनै: पवित्र हो जाता है।

भक्ति और प्रेम से व्यक्ति नि:स्वार्थी बन जाता है। मनुष्य के मन में जब किसी व्यक्ति के प्रति श्रद्धा बढ़ती है तब उसी अनुपात में स्वार्थपरता घट जाती है। मनुष्य प्रयास करने पर प्रेम और भक्ति को बढ़ा सकता है और उसके फलस्वरूप स्वार्थपरता भी घटा सकता है। प्रेम करने से मन शनै:-शनै: सब प्रकार की संकीर्णताओं को छोड़कर विश्व में लीन हो जाता है। प्रेम भक्ति अथवा श्रद्धा के लिए किसी भी वस्तु अथवा विषय का ध्यान एवं चिन्तन करना आवश्यक है। मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही स्वयं बन जाता है। जो अपने आप को दुर्बल और पापी समझता है वह क्रमश: दुर्बल और पापी हो जाता है। जो अपने आप को पवित्र और शक्तिशाली मानता है वह पवित्र और शक्तिशाली बन जाता है। मनुष्य की जिस प्रकार की भावना होती है उसी प्रकार की सिद्धि उसे प्राप्त होती है।

भय पर विजय प्राप्त करने का उपाय है शक्ति, विशेष रूप से दुर्गा, काल आदि शक्ति की साधना करना। शक्ति के किसी भी रूप की मन में कल्पना करके प्रार्थना करने

और उनके चरणों में मन की दुर्बलता और मलिनता को अर्पित कर देने से मनुष्य शक्ति प्राप्त कर सकता है। हमारे भीतर अनन्त शक्ति निहित है। उस शक्ति का बोध करना पड़ेगा। पूजा का उद्देश्य है मन में शक्ति का बोध करना। प्रतिदिन शक्ति रूप का ध्यान करके शक्ति से प्रार्थना करना और पांचों इन्द्रियों तथा सभी शत्रुओं को उनके चरणों में समर्पित करना। पंचप्रदीप का अर्थ है पंचेन्द्रियां। इन पांच इन्द्रियों की सहायता से माता की पूजा होती है .....हम धूप, गुग्गुल आदि सुगन्धित पदार्थों से पूजा करते हैं। बलि का अर्थ है वासनाओं की बलि देना। मैथुन भावना की विशेष रूप से बलि देना।

साधना का लक्ष्य है एक ओर तो वासनाओं का नाश करना और दूसरी ओर सद्वृत्तियों का विकास करना। वासनाओं के नष्ट होते ही दिव्य भावों से हृदय परिपूर्ण हो जाएगा और हृदय में दिव्य भावों के प्रवेश करते ही समस्त दुर्बलताएं भाग जाएंगी। प्रति-दिन (सम्भव हो तो) दोनों समय इस प्रकार का ध्यान करना चाहिए। कुछ दिन ध्यान करने से शनैः-शनैः शक्ति प्राप्त होगी, हृदय में शांति भी अनुभव करोगे।'

साधना के मार्ग में सब से बड़ी रुकावट है इन्द्रिय लोलुपता। जब भी हम अन्तः यात्रा की ओर कदम बढ़ाना चाहते हैं तो इन्द्रियों के भोग हमें आगे नहीं बढ़ने देते हैं। ये इन्द्रिय जन्य विकार ही हमारे दुःख का भी कारण बनते हैं। इन विकारों से मुक्त होने की आवश्य-कता है। कटक से नेता जी ने माता ठकुरानी को इस सम्बन्ध में लिखा—'साधारण ठण्ढ से हम इतना घबराते हैं कि सारे शरीर को वस्त्रों के बोझ से लाद लेते हैं क्योंकि हम बाबू हैं। हम प्रत्येक स्थगन पर अपने को बाबू कहते हैं किन्तु वास्तव में हम मानवता से दूर हैं। मनुष्य के रूप में निरे पशु हैं। पशु से भी अधम हैं। क्योंकि हमारे पास ज्ञान है, विवेक हैं, पशुओं के पास वह भी नहीं। हम जन्म से ही सुख-विलास में पोषित होने के कारण तनिक-सा भी कष्ट नहीं सह सकते। इसी कारण हम इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रख पाते, उन्हें जीत नहीं पाते। जीवन भर इन्द्रियों के दास बनकर रहते हैं।' इन्द्रियों की यह अनियन्त्रता ही हमें पतन की ओर ले जाती है। इनकी भोगों से तृप्ति तो होती नहीं है बल्कि उसके स्थान पर व्यक्ति को मानसिक रोगी बना देती है। नेता जी ने 1917 में हेमन्त जी को पत्र लिखा जिसमें लिखा—'वास्तविक तथ्य तो यह है कि यह व्याधि तुम्हारी ही है, किसी अन्य की नहीं। मैं इस बात को बहुत दिनों से कहता आ रहा हूं और जिसे संशोधित करने की भी थोड़ी बहुत चेष्टा करता आ रहा हूं वह है—मानसिक विकार। जब तक इस से मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक मुझे ही क्यों, संसार भर को विकृति प्रतीत होती रहेगी।"

यह सत्य है कि इन्द्रिय लिप्सा हमें मानसिक रोगी बना देती है मगर हम यदि चाहें तो अपने ऊपर संयम करके इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटा सकते हैं। यही आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य है। इसके लिए सत्य के साथ दृढ़ता के साथ जुड़ने की आवश्यकता है तथा अपने बौद्धिक और चारित्रिक विकास को विकसित करने की आवश्य-कता है। माता ठकुरानी जी को 18-7-15 को लिखे एक पत्र में नेता जी स्पष्ट करते हैं—'क्या मनुष्य को पूर्ण सत्य के दर्शन हो सकते हैं? प्रत्येक मनुष्य एक सम्बन्धित सत्य को

अपने जीवन में पूर्ण सत्य मानकर, उसी के मापदण्ड से भले-बुरे का निर्णय करता है और सुख-दुःख को तोलता है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के वैयक्तिक दर्शन में दखल देने और उसके विरुद्ध कुछ कहने का किसी को अधिकार नहीं है। वस्तुत: जीवन दर्शन का आधार वास्तविक और सत्य होना चाहिए। स्पेन्सर का सिद्धांत है—मनुष्य तब तक सोचने और कर्म करने को स्वतन्त्र है जब तक कि वह अन्य किसी व्यक्ति की स्वाधीनता को भी वैसा ही अक्षुण्ण रखता है, जैसा कि अपनी को। आगे मानसिक तैयारी की आवश्यकता है। फिर चिन्तन तथा कर्म साथ-साथ चलेंगे। अन्त में कर्म स्रोत में अपने आप को बहा देना है। पहले तो दो-एक आवश्यक कार्य निबटा लें अन्यथा कार्य को करने की क्षमता ही समाप्त हो जावेगी। जीवन के दो पक्ष हैं—बौद्धिक एवं चारित्रिक।... प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में आंशिक ज्ञान प्राप्त करने से तो चलता नहीं। कार्य सिद्धि तो तभी हो सकती है जबकि कुछ ही वस्तुओं के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाए और वह सब एक व्यवस्थित क्रम में हो। यह कार्य केवल उस ज्ञान को एकत्रित करने मात्र से ही सफल नहीं बनाया जा सकता, बल्कि इसके लिए तो सृजनात्मक प्रतिभा की आवश्यकता है।

आध्यात्मिक अपेक्षा में जब व्यक्ति इस प्रकार के उत्कृष्ट ज्ञान की सीमा पर पहुंच जाता है तो उसके भीतर एक सही और निश्चित दिशा की ओर बढ़ने की दृढ़भूमि तैयार हो जाती है। सफलता के लिए यही आवश्यक भी है। फिर उसे संसार के कष्ट भी कष्ट जैसे प्रतीत नहीं होते। क्योंकि लक्ष्य उसके सामने होता है। उस लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग की समस्त बाधाएं वह स्वीकार करता है। दुःख और कष्ट भी उसके लिए प्रेरणा स्रोत ही बन जाते हैं। बल्कि ये दुःख और कष्ट भी आनन्द तक ले जाने वाले साधन ही बन जाते हैं। नेता जी ने इस बारे में 2-5-25 को मांडले जेल से लिखे एक पत्र में दिलीप जी को लिखा है—'बाद में हम अपने पार्थिव अस्तित्व को ही भूल जाएं और अपने हृदयों में एक आनन्द धाम बना लें, इसी कारण यह पीड़ाएं हमारी स्वप्नाविष्ट आत्मा को जगा कर बता देती है कि मनुष्य के चारों ओर किस प्रकार की कठोर और दुःखद स्थिति है। मैंने तुम्हें बताया था कि मनुष्य के अश्रु किस प्रकार धरती को भीतर तक आर्द्र कर रहे हैं परन्तु यह अश्रु दुःख के ही नहीं हैं, इनमें करुणा और प्रेम के भी अश्रु हैं। समृद्ध और अनन्त आनन्द स्रोत में पहुंचने की सम्भावना होने पर क्या तुम छोटे-छोटे दुःखों को सहन करना अस्वीकार कर देते ? मैं तो दुःख या उत्साहहीनता का कोई कारण नहीं देखता, अपितु मेरी तो धारणा है कि दुःख श्रेष्ठ कर्म और महान सफलता की प्रेरणा देंगे। तुम्हारा क्या विचार है दुःख सहन किए बिना जो उपलब्धि होती है क्या उसका कोई मूल्य है ?

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस हमें उपनिषद की उस भूमि को छूते हुए दिखाई देते हैं जहां परम ज्ञानी याज्ञवलक्य अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्मा का महान उपदेश देते हैं कि संसार में कोई व्यक्ति एक दूसरे को इसलिए प्यार नहीं करता है कि वास्तव में उसे प्यारा है बल्कि इसलिए करता है क्योंकि वास्तव में वह अपनी ही आत्मा को प्यार करता है। नेता जी 22-8-12 को शरत्‌चन्द्र जी को पत्र लिखते हुए कहते हैं कि—'मैं मातृ स्नेह को इतना अधिक महत्व नहीं देता। क्या वास्तव में मातृ स्नेह पूर्णत: स्वार्थ रहित होता है जब तक मां किसी भी अपरिचित बालक को अपने पुत्र के समान प्यार नहीं करती तब तक क्या

उसका पुत्र स्नेह स्वार्थरहित कहला सकता है ? मां स्वयं पुत्र का लालन-पालन करती है इसीलिए उसका ममत्व उस पर होता है। मैंने इस जीवन में प्रेम का अनुभव किया है। जिस स्नेह उदधि, प्रेम सागर में संतरण कर रहा हूं उसके समक्ष मातृ स्नेह का बन्धन कैसे मानूं ? इस स्वार्थ पूर्ण संसार में मनुष्य केवल मातृ स्नेह को ही स्वार्थ रहित समझता है। इसी कारण वह उसकी बहुत प्रशंसा करता है। अपने द्वारा पोषित वस्तु पर तो सभी की ममता होती है। इसमें कौन-सी बात है ? परन्तु जो किसी अपरिचित पथिक को हृदय सिंहासन पर बिठा सकता है, विशालता तो उसके हृदय की है, उसी का प्रेम महान है...... (मुझे) भगवान की अनुभूति सदैव रहती है। शरीर से साथ न होने पर भी अदृश्य रूप से वह मेरे साथ है। उसकी मंगलकामना मुझे सदैव कल्याण पथ पर ले जाती है।

ऐसा चिन्तन बनाने के लिए निरन्तर उच्चादर्शों के साथ जुड़े रहने की आवश्यकता है। जब आदर्श के आधार पर व्यक्ति जीवन की उपलब्धियों के बारे में सोचता है तो उसके लिए आन्तरिक उपलब्धियां ही श्रेयस्कर लगती हैं। गोपाल लाल सान्याल को नेता जी ने इनसीन जेल से 5 अप्रैल, 1927 को एक पत्र लिखा जिसमें वे कहते हैं—'जिस मापदण्ड से हमारा विचार होगा वह आन्तरिक है बाह्य नहीं, क्योंकि बाह्य मापदण्ड से तो हो सकता है कि हमारे जीवन का मूल्य शून्य ही ठहरे। यदि यहां पर ही पटाक्षेप हो तो वास्तव में संसार पर हमारे जीवन की स्थाई छाप भी नहीं रह सकती। यदि जीवन में और कोई काम नहीं कर सका, आदर्श को यदि वास्तविकता के रूप में प्रकट करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सका, तब भी मेरा जीवन व्यर्थ नहीं जाएगा। महान आदर्श को यदि हृदय में रखूं, शरीर और मन को यदि उस महान आदर्श स्वर में बांध कर रहूं, यदि आदर्श से मेरा अस्तित्व मिला रहे, तो मैं सन्तुष्ट ही मेरा जीवन जगत के समक्ष व्यर्थ नहीं होने पर भी मेरे निकट (और सम्भवत: विधाता के निकट भी) व्यर्थ नहीं है जगत में सब कुछ क्षण-भंगुर है, केवल एक वस्तु नष्ट नहीं होती, और वह वस्तु है भाव या आदर्श। हमारे आदर्श ही हमारे समाज की आशा हैं। हमारी विचारधारा अनश्वर है। क्या कोई निजी भाव को दीवार से घेर कर रख सकता है ?

आदर्श की प्राप्ति समर्पण की पूर्णता पर निर्भर है। त्याग और उपलब्धि एक ही सिक्के को दो पहलू हैं। अब मेरा मन सम्पूर्ण रूप से पाने और देने के लिए आकुल है। जो विचार मुझे इतनी दुर्बलता में भी शक्ति के उच्च शिखर तक ले आए क्या वे अब मेरे लिए शक्ति स्त्रोत नहीं रहेंगे। उपनिषद में लिखा है—'य मे वैष वृणुते तेन लभ्य:।'

किसी भी व्यक्ति को ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए पर्याप्त चिन्तन और मनन की आवश्यकता होती है। नेता जी का जीवन हमें पूर्ण रूप से अध्यात्मक के उच्चादर्श को छूता हुआ दिखाई देता है। परमात्मा के प्रति जिसमें पूर्ण समर्पण करना सीख लिया मानों उसने जन्म और मृत्यु के रहस्य को भी जान लिया। वह कर्म और कर्म फल की गहराईयों तक भी पहुंच जाता है। माता ठकुरानी को वे एक पत्र में लिखते हैं--'पूज्यपाद गुरु जी के स्वर्गवासी होने के विषय में सोचता हूं तो निर्णय नहीं कर पाता कि दु:खी होऊं या सुखी। देहान्त होने पर मनुष्य कहां जाता है और किस स्थिति में रहता है यह मुझे ज्ञात नहीं। किन्तु मृत्यु के पश्चात हमारी आतमा ब्रह्म में लीन हो जाती है। वह दिन हमारे लिए

प्रसन्नता का दिन है, दु:ख का नहीं। फिर हमें इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता, सांसारिक कष्ट नहीं भोगने पड़ते और नित्य आनन्दमय ब्रह्म में लय हो जाते हैं। जब सोचता हूं कि गुरु की नित्य आनन्दमय धाम को गए हैं। वे स्वर्गवासियों के साथ एक पंक्ति में बैठकर स्वर्गीय अमृत का पान कर रहे हैं, तब दु:ख अनुभव करने का कारण समझ में नहीं आता। वह चिरआनन्दपुर में पहुंच कर महासुखी हैं, तब यदि उनके सुख में सुखी होता हूं तो शोक कैसा? दयामय भगवान जो कुछ करते हैं, वह जगत के कल्याण के लिए ही करते हैं। इस तथ्य को पहले हम समझ नहीं पाते। जब इसका सुफल दिखाई देता है तब हमारी समझ में आता है कि हरि कल्याण ही करते हैं। भगवान ने जब गुरू जी को उनके हित के लिए हमसे विलग कर दिया तब हमें शोक करना उचित नहीं। क्योंकि जो वस्तु भगवान की है वह उसने ले ली। हमारा उस पर क्या अधिकार है?

यदि ईश्वरेच्छा से कुमार्ग पर जाने वालों को धर्म पथ दिखाने और सनातन धर्म में दीक्षित करने के लिए उन्होंने दुबारा मानव शरीर धारण किया हो या शीघ्र ही करें तब भी हमें दु:खी न होना चाहिए, क्योंकि इससे जगत का कल्याण ही होगा। जगत का मंगल ही प्रत्येक मनुष्य का मंगल है। हम भारतीय हैं भारत का कल्याण ही हमारा कल्याण है यदि गुरु जी पुन: जन्म लेकर भारतवासियों को धर्म की ओर प्रवृत्त कर सकते हैं तो हमें इससे प्रसन्न ही होना चाहिए। भगवान् ने गीता में लिखा है—

देहिनाऽस्मिन्यथा देहे कौमारंयविनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्त्र न मुह्यति॥

हम सब सकुशल हैं। हम सब ईश्वर के खिलौने हैं। हमारी शक्ति कितनी अल्प है सब कुछ ईश्वर की दया पर निर्भर है। हम तो उपवन के माली हैं, स्वामी तो वही है। हम उपवन में काम करते हैं परन्तु फल पर हमारा अधिकार नहीं है। जो फल होते हैं उन्हें उनके चरणों में अर्पित कर देते हैं। कार्य करने का अधिकार तो हमें है परन्तु फल ईश्वर के अधीन है। इस कारण गीता में भगवान ने कहा है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'

इस जीवन का मुख्य लक्ष्य है परमात्मा को प्राप्त करना। परमात्मा ने हमें यह देव दुर्लभ शरीर केवल और काल मात्र इसी उपलब्धि के लिए दिया हुआ है। इसलिए इस जीवन का प्रभु प्राप्ति के लिए ही प्रयोग करना चाहिए। परमात्मा की कृपाओं का परिष्कार इसी रूप में किया जा सकता है। यदि ऐसा नहीं किया तो निश्चित रूप से हम परमात्मा की दृष्टि में दोषी होंगे। इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए नेता जी ने कटक से माता ठकुरानी जी को पत्र में लिखा था—'ईश्वर का अनुग्रह कम नहीं। देखो तो जीवन में हर क्षण उसके अनुग्रह का परिचय मिलता है। वास्तव में तथ्य तो यह है कि हम अन्धे, अविश्वासी, नास्तिक हैं और भगवान की कृपा का महत्व नहीं जान पाते। उनके अनुग्रह को कैसे जान सकते हैं? विपत्ति में लोग ईश्वर को स्मरण करते हैं। मैं तो हृदय में पूर्ण निष्ठा से स्मरण करता हूं। परन्तु जैसे ही विपत्ति समाप्त होती है और सुख के दिन आते हैं हम ईश्वर को स्मरण करना भूल जाते हैं। इसी कारण कुन्ती ने कहा था कि हे स्वामी तुम मुझे

सदैव विपत्ति में रखना। तब मैं सच्चे हृदय से तुम्हें स्मरण करूंगी। सुख वैभव में तुम्हें भूल जाऊंगी, इसलिए मुझ सुख मत देना।

जन्म मरण ही जीवन है। इस जीवन में हरि का नाम स्मरण करना ही जीवन की सार्थकता है। यदि हमने ईश्वर का नाम स्मरण नहीं किया तो जीवन व्यर्थ है मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि पशु ईश्वर का अस्तित्व नहीं जानता और जान कर उसे स्मरण करने में असमर्थ हैं। हम प्रयास करने से ईश्वर को जान सकते हैं, उसे स्मरण कर सकते हैं, ज्ञान असीम है। वह सीमित बुद्धि द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसी कारण भक्ति की आवश्यकता है। मैं तर्क करना चाहता हूं क्योंकि अज्ञानी हूं। अब तो केवल मैं यह दृढ़ विश्वास करना चाहता हूं कि ईश्वर का अस्तित्व है। यही मेरी आस्था है। विश्वास से भक्ति उत्पन्न होगी और भक्ति से ज्ञान उपजेगा। महर्षियों ने कहा है—'भक्ति ज्ञानीय कल्पते।' भक्ति ज्ञान के पीछे भागती है। शिक्षा का उद्देश्य अर्थ बुद्धि को परिमार्जित करना है और सत्य-असत्य की विवेचना-शक्ति का अर्जन करना है। इन दो उद्देश्यों को पूर्ण होने पर ही शिक्षा सार्थक होती है। शिक्षित व्यक्ति यदि चरित्रहीन हो तब भी क्या उसे विद्वान कहेंगे? कभी नहीं। यदि कोई व्यक्ति मूर्ख होकर भी विवेक के अनुसार आचरण करता है और ईश्वर भक्त है तो वास्तव में वही महापण्डित कहलायेगा। यथार्थ ज्ञानी तो वही है जिसे ईश्वर बोध है। यों ही शास्त्र ज्ञान का प्रकाशन करना ज्ञान नहीं है। मैं केवल विद्वान व्यक्ति को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता। जिसके नेत्रों में ईश्वर स्मरण करते समय प्रेमाश्रु होते हैं उसी को मैं देवता मानता हूं। भंगी होने पर भी मैं ऐसे व्यक्ति की पग धूलि का स्पर्श करके अपने को धन्य समझूंगा। और एक ही बार दुर्गा या हरिनाम स्मरण से जिनके तन में स्वेद, अश्रु, रोमांच आदि-आदि सात्विक लक्षण प्रकट होते हैं वह व्यक्ति तो साक्षात् भगवान ही है। उसके चरण स्पर्श से धरती पावन होती है। हम तो उसके समक्ष अत्यन्त तुच्छ हैं।

हम व्यर्थ में धन के लिए हाय-हाय करते हैं। हम एक बार भी तो यह नहीं सोचते कि वास्तव में धनी है कौन? जिसके पास भगवत्-भक्ति, भगवत् प्रेम है वही इस संसार में धनी है। ऐसा व्यक्ति के समक्ष महाराजाधिराज भी दीन भिक्षु के समान है। भगवत् भक्ति जैसे अनमोल धन के अभाव में हम जीवित हैं, यह भी एक विचित्र बात है।

परीक्षा का समय निकट देख कर हम बहुत घबराते हैं। किन्तु एक बार भी यह नहीं सोचते कि जीवन का प्रत्येक पल परीक्षा काल है। यह परीक्षा ईश्वर और धर्म के प्रति है। स्कूलों की परीक्षा तो दो दिनों की है परन्तु जीवन की परीक्षा अनन्तकाल के लिए है, उसका फल हमें जन्मान्तर तक भोगना पड़ेगा।

भगवान के श्री चरणों में जिन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है उनका जन्म सफल है। दुःख की बात तो यह है कि इस महान सत्य को समझते हुए भी नहीं समझते। हम ऐसे अन्धे अविश्वासी और मूर्ख हैं कि किसी प्रकार से भी हमारे ज्ञान चक्षु नहीं खुलते। हम मनुष्य नहीं कलि के राक्षस हैं।

हमारा अवलम्ब यही है कि भगवान दयालु हैं। घोर पाप में रत रहने पर भी मनुष्य उनकी दया का परिचय पाता है। भगवान की दया है असीम है।

परमात्मा की दयालुता और मानव जीवन के चरम लक्ष्य के बारे में नेता जी ने एक अन्य पत्र में माता को लिखा —'दयालु ईश्वर ने हमें मनुष्य योनि में जन्म दिया है और स्वस्थ शरीर, बुद्धि, शक्ति आदि प्रदान की है। आखिर क्यों ? ईश्वर ने आपकी पूजा के लिए ही मनुष्य को यह दुर्लभ गुण दिए होंगे, किन्तु हम उसकी पूजा कब करते हैं ? दिन में एक बार भी हृदय से उसे स्मरण नहीं करते। मां यह सोचकर दु:ख होता है कि जिस ईश्वर ने हमारे लिए इतना किया जो सुख-दु:ख में, घर बीहड़ वन में सदैव ही हमारा मित्र जो हमारे निकट सदैव ही रहता है, हमारे मन मन्दिर में निवास करता है, जो ईश्वर हमारा आत्मीय है उसे हम एक बार भी हृदय में स्मरण नहीं करते।

संसार के तुच्छ पदार्थों के लिए हम कितना रोते हैं किन्तु ईश्वर के लिए हम अश्रुपात नहीं करते। मां, हम तो पशुओं से भी अधिक कृतघ्न और पाषाण हृदय हैं। उस शिक्षा को धिक्कार है जिसमें ईश्वर का नाम नहीं, और उस व्यक्ति का जन्म निरर्थक है जो प्रभु का नाम स्मरण नहीं करता। प्यास लगने पर लोग नदी-सरोवर का जल पीकर प्यास बुझाते हैं परन्तु इससे क्या मन की प्यास बुझती है ? नहीं प्यास साधारण जल से नहीं बुझती। इसलिए शास्त्रकारों ने लिखा है—

'भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते।'

□

जम्मू-कश्मीर के लेखकों से विशेष अनुरोध

राज्य की कला, संस्कृति एवं साहित्य के सृजन एवं
विकास का साक्ष्य प्रस्तुत करती रचनाएं
आमंत्रित हैं, अविलम्ब भिजवाएं।

—सं०

कश्मीर के महान चिंतक सिद्धवसु गुप्त और शैवदर्शन

□ डा. जागीरसिंह

कश्मीर अद्वैत शैव दर्शन में आचार्य वसुगुप्त का स्थान अग्रगण्य है। इस दर्शन की गुरु-परम्परा में आदि गुरु परमशिव को माना जाता है। इनको भगवान् शिव से ही साक्षात् शैव-रहस्य का ज्ञान प्राप्त हुआ था। ये स्वयं एक सिद्ध महापुरुष थे और अद्वैत मतावलम्बी थे। इसी कारण इनमें महेश्वर की भक्ति का प्राबल्य था। ये कश्मीर में श्रीनगर के पास महादेव गिरि पर निवास करते थे और यहीं पर साधना-क्रम से इनको भगवान् शिव ने एक सिद्ध पुरुष के रूप में जगत्-कल्याणार्थ कृतार्थ किया था :—

"इह कश्चित् शक्तिपातवशोन्मिषन्माहेश्वरभक्त्यतिशयात्......शिवाराधनपर: पारमेश्वर-नानायोगिनी सिद्धसत्सम्प्रदाय-पवित्रितहृदय: श्री महादेवगिरौ महामाहेश्वर: श्रीमान् वसुगुप्तनामा गुरुरभवत्"—शिवसूत्र।

इनके माता-पिता तथा परिजनों के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। न किसी लौकिक गुरु का ही उल्लेख मिलता है। अतएव इनके जन्म-काल, कुमारपन एवं यौवन से सम्बन्धित तथ्यों से अनभिज्ञ रहने से इनके जीवन का पर्याप्त परिचय उपलब्ध नहीं है। फिर भी सिद्धावस्था की यत्किञ्चित जानकारी दर्शन जगत् के लिये अमूल्य एवं अन्धकार में प्रकाश की किरण की भांति महत्त्वपूर्ण है।

इनकी शिष्य-परम्परा में सर्वप्रमुख भट्ट कल्लट थे, जो एक प्रकांड विद्वान् थे और राजा अवन्तिवर्मण के राज्यकाल (857/6—883/4ई० पू०) में एक सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध थे। अपने गुरु की भांति यह महान् जन-कल्याणी थे। इसलिए इन (वसुगुप्त) का समय नवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल (800-900 ई० प०) के आस-पास प्रतीत होता है। राजतरङ्गिणी के उद्धरण के अनुसार—

"अनुग्रहाय लोकानां भट्टा: श्रीकल्लटादय:।
अवन्तिवर्मण: काले सिद्धा: भुवमवातरन्॥"

सन्दर्भ से अनुमानित होता है कि अन्य (श्रीकल्लट, सोमानन्द, उत्पलदेवादि) सिद्धों सहित इन्होंने भी उस समय अपने गुप्त-साधनामय जीवन का लोक-कल्याणार्थ ही प्रकटाव किया था। इनकी अतुलनीय महत्ता एवं जन-कल्याणार्थ आध्यात्मिक उपदेशों सहित मौलिक साहित्य लेखन की कश्मीर शैव दर्शन में उपयोगिता का आकलन करना अत्यन्त दु:साध्य है, तथापि यथासम्भव कुछ मौलिक योगदान के तथ्यों का इस प्रकार संकेत किया जा सकता है—

कश्मीर के अद्वैत शैव मत का मूल प्रवर्तन—यद्यपि इस मत की मूलभूत साहित्य-परम्परा का उद्गम स्थल भैरव और भैरवी (शिव-शक्ति) माने जाते हैं, जिनकी उपदेश-परम्परा से अन्ततोगत्वा अद्वैत, द्वैताद्वैत एवं द्वैत मत विषयक 92 आगमों का प्रादुर्भाव हुआ था। इनमें 64 आगम अद्वैत मत विषयक हैं, जिनका प्रचार-प्रसार शिव को लोक-कल्याण हेतु श्री कण्ठनाथ के रूप में ब्रह्मर्षि दुर्वासा को सद्प्रेरणा से उनके मानस सिद्ध पुत्र त्र्यम्बकादित्य एवं उसके वंशजों ने उत्तरोत्तर विकास क्रम से किया। यही सत्सम्प्रदाय का रहस्य ज्ञान बसुगुप्त को इस मत के सिद्ध-योगिनी एवं सच्छास्त्रों से उपलब्ध हुआ। भगवान् शिव ने स्वयं भी इन्हें दर्शन देकर शिवोपनिषद्-संग्रहरूप शिवसूत्रों का दैवी ज्ञान प्रदान किया, जिस को इन्होंने साहित्यिक रूप प्रदान किया। इनसे पूर्व इस दर्शन की साहित्य-परम्परा प्राय: लुप्तप्राय: सी हो चुकी थी। नागबोधी की अधीक्षा में बौद्ध दर्शन, जिसको राज्य प्रश्रय भी उपलब्ध था, पर्याप्त प्रभावयुक्त था। इस प्रकार उस समय नास्तिक दर्शनों का बोलबाला था। इसके फलस्वरूप जनता परमार्थ अद्वैत ज्ञान से वंचित हो चुकी थी तथा द्वैतवासना से ग्रसित थी। जैसा कि शिवदृष्टि में तत्कालीन दुष्चक्र का प्रभाव निरूपित करते हुए कहा गया है कि उस समय कलि-कालुष्य के प्रभाव से इस सम्प्रदाय के सिद्ध पुरुष कलापि प्रमुख गांवों में पर्वत-कन्दराओं में अन्तर्धान हो चुके थे। शिव-शासन उच्छिन्न-सा हो गया था।

अत: ऐसे समय में वसुगुप्त, भट्ट कल्लट, सोमानन्द, एवं उत्पलदेवादि सिद्धों का आविर्भाव यथार्थ में ही अन्धकार में नवीन प्रकाश-स्रोत का प्रतीक था। इन्होंने दैवी ज्ञान को अपनी कृतियों के माध्यम से सर्वप्रथम मांसलता प्रदान की, जिससे एक तो बिखरे हुए आगम साहित्य का नवीन एवं सरल संस्कृत रूप उपलब्ध हुआ, दूसरे दर्शन के नव आयामों का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसीलिए, शिव के मूल उपदेशक होने एवं शैवागमों की वेदों के समान पवित्रता माने जाने पर भी, वसुगुप्ताचार्य को वर्तमान कश्मीर अद्वैत शैव दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है।

अद्वैत शैव मत को संरक्षण—राजतरङ्गिणी एवं नीलमत पुराणादि से ज्ञात होता है कि आठवीं शताब्दी पर्यन्त बौद्धादि मतों का कश्मीर में अत्यधिक फैला चुका था। विशेषकर बौद्धमत के उद्भट विद्वान् नागबोधी इत्यादि सिद्धों का सर्वत्र बोलबाला था। ऐसे समय में एक युग प्रवर्तक महापुरुष की आवश्यकता थी, जो एक तो अपने तर्कसंगत, वैज्ञानिक एवं सहज बोधगम्य सदुपदेशों से जनता को अद्वैत मार्ग की ओर आकर्षित करने में प्रवीण हो, दूसरे द्वैतवादी मतावलम्बियों की मान्यताओं को प्रभावशील चुनौती देने में समर्थ हो। वसुगुप्त ऐसे ही सिद्ध महापुरुष थे, जिन्होंने अपनी अलौकिक साधना, शिवभक्ति प्राबल्य एवं उच्च व्यक्तित्व से द्वैतवादी नागबोधी प्रमुख बौद्ध सिद्धों की

शिक्षाओं को निम्न स्तर की मानते हुए स्वीकार नहीं किया। प्रत्युत् अद्वैत शैव धर्म की रक्षा एवं रहस्य ज्ञान के प्रचारार्थ अदम्य प्रयास किया। इसके फलस्वरूप कश्मीर अद्वैत शैव दर्शन का राजा अवन्तिवर्मन के काल में पुन: स्वागत हुआ एवं इस प्रकार द्वारा जनता में इस धर्म अथवा दर्शन को सफल संरक्षण मिला।

वसुगुप्त की कृतियां अपनी नवीनता, सरलता एवं मौलिकता के लिये सर्वथा समादृत हैं। यही कारण है कि इस मत के प्रत्येक आचार्य ने इनकी कृतियों से पर्याप्त मार्गदर्शन ग्रहण किया है एवं अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिये इनकी कृतियों से उद्धृत किया है। इस प्रकार इनकी कृतियां उनके लिये उपजीव्य रही हैं। इनके शिवसूत्रों को शिवोपनिषद्" तथा स्पन्दशास्त्र को "स्पन्दामृत" कहा जाता है। सोमानन्द की प्रसिद्ध रचना "शिवदृष्टि" इनके शिवसूत्रों का दार्शनिक एवं तर्कसंगत विकास कही जाती है, जिसका उत्पलदेव की प्रसिद्ध कृति "ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा" प्रतिबिम्बन (Reflection) कही जाती है। राजानक क्षेमराज की रचना "प्रत्याभिज्ञाहृदयम्" ईश्वर प्रत्यभिज्ञा महोदधि का साररूप कही जाती है, जो स्वयं शिवोपनिषद् का सारतत्व है। अत: स्पष्ट है कि स्पन्दशास्त्र एवं प्रत्यभिज्ञा शास्त्र का भी "शिवसूत्र" मूल स्रोत रूप है। इनके परवर्ती आचार्यों ने इनके सिद्धांतों का ही विकास आदि किया है। अत: इनकी कृतियां एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य देती रही हैं।

वसु गुप्ताचार्य ने न केवल अपने सच्छिष्यों में मौखिक रूप से ही दैवी ज्ञान को संक्रमित किया, प्रत्युत अपनी साधना, सत्सम्प्रदाय के सिद्धयोगिनी एवं साक्षात् शिव से प्राप्त रहस्य ज्ञान को लोक-मङ्गलहेतु लिपिबद्ध भी किया। इस प्रकार इस ज्ञानामृत को सदा के लिए सभी के लिए सहज सुलभ कर दिया तथा पुन: लोप होने की आशङ्का को निरस्त कर दिया। इनकी उपलब्ध कृतियां इस प्रकार हैं—

शिवसूत्र—इनमें मुख्य रूप से आत्मा (परमसत्ता) के चैतन्य अर्थात् सर्वज्ञान-क्रिया-स्वतन्त्ररूपादि का वर्णन है। आत्म परमेश्वर की स्थिति प्राप्ति (शिवत्व सिद्धि) के लिये, जोकि अज्ञान के निराकरण एवं सहजविद्या के उदयमात्र से सुलभ है, अधिकारी भेद की अपेक्षा से शाम्भव, शाक्त और आणव उपायों का वैज्ञानिक वर्णन है। इसके साथ-साथ योगज सिद्धियों के ऐश्वर्य इत्यादि का भी निरूपण है।

स्पन्दकारिका (स्पन्दामृत)—इसमें परमसत्ता (Ultimate Reality) की स्पन्द (स्वभाविकी शक्ति) विधा (Aspect) का सुन्दर वर्णन है, जिससे समस्त विश्व-लीला का उन्मीलन-निमीलन विलास सतत प्रवाहित होता रहता है और इसी के कारण शिव का महेशत्वादि सम्भव माना गया है। इसके अज्ञान से बन्धन एवं परीज्ञान से मुक्ति (Salvation) बतलाई गई है।

वासवी टीका—यह भगवद्गीवता का उत्कृष्ट भाष्य है, जो अद्वैत शैवी दृष्टिकोण का परिचायक है।

सिद्धान्तचन्द्रिका—इसमें अन्य मतों के वादों का खण्डन करके आत्म-चैतन्य के एक कारणवाद का अभिव्यक्तिकरण किया गया है।

इस प्रकार, इनकी ये उपलब्ध कृतियां अपने वर्ण्य विषय की महानता से सर्वथा परवर्ती आचार्यों के लिये ज्ञान संवर्धन हेतु अमूल्य धरोहर का कार्य करती हैं। अद्वैत शैवी सिद्धांतों का सारगर्भित संकलन प्रस्तुत करती हैं। अतः इनका समर्पण एक अद्वितीय निधि-स्वरूप है।

वसुगुप्त के सम्बन्ध में तो सुविदित है कि वे एक सफल साधक, उत्कृष्ट अनुभवी प्रकांड विद्वान् और सिद्ध महापुरुष थे। इस उच्च व्यक्तित्व की संरचना में सत्सम्प्रदाय की एवं परमेश्वर सिद्धांत में परिपक्वता प्राप्त सिद्ध-योगिनियों की शिक्षा ने प्रभूत योगदान दिया था। परन्तु इन सब से बढ़कर श्रेयस्कर तथ्य यह है कि इनकी प्रगाढ़ भक्तिनिष्ठा से प्रसन्न होकर परमशिव ने स्वयं इनकी प्रतिभा को लोकानुग्रह के लिए उन्मेषित किया था, जिससे प्रेरणा पाकर वर्तमान अद्वैत शैव मत का भव्य पुनरुत्थान, विकास एवं परिमार्जन हुआ। इसी कारण शैवमत को अन्य भारतीय दर्शनों में सर्वोच्च स्थान स्थापित हुआ है—

"अनुजिघृक्षापरेण परमशिवेन स्वप्ने अनुगृह्य उन्मिषितप्रतिभः कृतः"—शिवसूत्र विमर्शिनी।

जहां अत्युत्तम अद्वैत शैवी साहित्य की मौलिक रचना इनकी एक अन्य महान् उपलब्धि है। इन्होंने भट्ट श्री कल्लट जैसे शिष्यों का प्रतिभा बल उभारा, जो तत्कालीन समाज में एक "सिद्ध पुरुष" के रूप में विख्यात हुए। इन्होंने अपने शिष्यों को (शैव रहस्य) का ज्ञान दिया, जिसके प्रभाव से उन्होंने उत्तरोत्तर क्रम से इन रहस्यों का मौखिक एवं लिखित ढंग से प्रचार-प्रसार किया। आज अद्वैत शैव साहित्य का निर्माण इन श्रेष्ठ प्रतिभाओं की ही देन है।

अद्वैत शैव सिद्धान्त का प्रतिपादन—इन्होंने तत्कालीन समाज में फैले हुए द्वैत मत के उन्मूलन के लिये सर्वप्रथम शिवसूत्रों के प्रकटाव से आत्म-चैतन्यवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया—

"चैतन्यमात्मा"--शिवसूत्र शरीर, प्राण, शून्य, अभाव, बुद्धि इत्यादि को आत्मा मानने वाली लौकिक—चार्वाक, वैदिक, योगाचार एवं माध्यमिक बौद्धादि की मान्यताओं का युक्तिपूर्वक खण्डन करके एकात्मवाद पर बल दिया। यति, पाश और पशु को एक ही परमेश्वर की लीला वैचित्र्य बताया। असीमित ज्ञान-क्रियादि शक्तियों से सम्पन्न सार्वभौम चेतनतत्त्व को अपनी ही स्वातन्त्र्य महिमा से संकुचित (सीमित) करना है। अर्थात् आणवोपाय, है। उन्होंने अज्ञान को भी ज्ञान का अभाव न मानकर उसका संकुचित रूप ही कहा है। कलादि पांच कञ्चुक (पाश) एवं पाशभूः (माया) भी वेदांतियों की अपेक्षा महेश्वर की शक्ति ही बतलाई गई है। अतः शक्ति संकोच ही बन्धन एवं शक्ति विकास ही मोक्ष बतलाया है। तात्पर्य यह है कि अपने स्वाभाविक रूप का सहज ज्ञान (प्रत्यवमर्श) ही शैव दशा बतलाई हैं। सर्वकर्तृत्व-सर्वज्ञातृत्व आदि को शक्ति उल्लास महिमा का ही प्रसाद कहा हैं। जगत् को भी असत्य रूप न कह कर शिव की शक्ति का विकसित रूप ही माना है—

"स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्"—शिवसूत्र अधिकारी चित्तभेद से शाम्भव, शाक्त और

आणवोपायों का निर्देश किया गया है। पराशक्ति से सामान्य स्पन्दन पर ही जगत् के विशेष स्पन्दन (गुण व ज्ञान वैचित्र्य) आश्रित कहे गये हैं, जिसके अवर रूप (विशेष स्पन्द, गुण तत्त्व) का वर्तमान विज्ञान कुछ सीमा तक विश्लेषण करने से अभिनव विकास को प्राप्त हो रहा है। इसका नाम "बल" रखा गया है, जो ऊष्मा, प्रकाश, ध्वनि एवं ऊर्जा आदि विविध रूपों में उपलब्ध है। परन्तु इन सब का वास्तविक आधार सार्वभौमिक ऊर्जा शक्ति दर्शाना सामान्य स्पन्द (सर्वशक्तिमान्) की विद्यमानता को मानना ही है। अत: वसु गुप्त ने अपने अद्वैत सिद्धांत के प्रतिपादन से परमार्थ दर्शन का शिलान्यास स्थिर किया है; स्वभाववाद, क्षणिकवाद, आरम्भवाद, परमाणुवाद, मायावाद इत्यदि की अपेक्षा सृष्टि, स्थिति एवं संहृति का सत्कारण एक ही परमार्थद्वय चेतन तत्त्व परमेश्वर को माना है।

वसुगुप्त की कृतियों एवं इनके उत्तराधिकारियों की शैव-परम्परा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन्होंने जाति, वर्ण इत्यादि समाज की कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया तथा सर्वजन सुलभ सार्वभौम दर्शन का मण्डन किया है। इसमें ईश्वर-प्राप्ति के लिए स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र, देशी-विदेशी सभी का समानरूप से अधिकार अभिव्यक्त किया गया है। उपायभेद केवल चित्तभेद के कारण ही माना गया है, जबकि लक्ष्य सभी का एक ही है। वैसे भी आणव उपाय की परिपक्वता से शाक्तोपाय एवं उसकी दृढ़ता से शाम्भवोपाय की दशा अनायास सुलभ हो जाती है। अत: उपायभेद क्रमिक विकास का ही प्रतीक है, जो वैज्ञानिक लक्ष्य है। जाति-वर्ण व्यवस्था एव वैदिक अधिकारी निष्ठा की दुरूहता का यहां कोई महत्त्व नहीं है।

निश्चय ही उपरोक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में सिद्ध वसुगुप्ताचार्य एवं उनका काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन को योगदान अनन्य है जिससे कश्मीर कभी उऋण नहीं हो सकता। □

सन्दर्भ—

शिवसूत्र—वसुगुप्त
स्पन्दकारिका—वसुगुप्त
वासवी टीका—वसुगुप्त
सिद्धान्तचन्द्रिका—वसुगुप्त
स्पन्द सर्वस्व—भट्ट कल्लट
स्पन्द सन्दोह—क्षेमराज
स्पन्द निर्णय—क्षेमराज
स्पन्दप्रदीपिका—उत्पल वैष्णव
तन्त्रालोक—अभिनवगुप्त
शिवदृष्टि—सोमानन्द
ईश्वर प्रत्यभिज्ञा—उत्पलदेव
Aspects of Kashmir Saivism—Dr. B. W. Pandita
Abhinava Gupta—An Histotical and Philosophical Study. —Dr. K. C. Pandy.
Contribution of Kashmir to Sanskrit niterature —Dr. K S. Vagrajan
राजतरंगिणी—कल्हण Edited by M. A. Stain

लद्दाख की सांस्कृतिक निधि गुम्पाएं

□ डॉ० प्रेम सिंह जीना

गुम्पाएं लद्दाख के सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये न केवल संस्कृति की निधि हैं, परन्तु बौद्ध समाज के साथ बहुत निकटता से जुड़ी है। हर शुभ व अशुभ कार्यों को सम्पन्न करने हेतु गुम्पाओं का सहारा लिया जाता है।

आम तौर पर गुम्पाओं अथवा बौद्ध मठों का निर्माण समाज अथवा बस्ती से दूर किसी ऊंची पहाड़ी, टीले या ऐसे स्थान में किया जाता है, जो गांव व समाज से दूर ऊंचा हो। परन्तु बहुत सी गुम्पाओं को आम ऊंचाई या बस्ती से दूर शुद्ध स्थानों पर भी बनाया जाता है।

लद्दाखी गुम्पाओं में बौद्ध संघ की पर्याप्त व्यवस्था है। गुम्पाओं की तरफ से उन्हें रहने, खाने तथा धार्मिक कर्म-काण्ड करने की पूरी सुविधा दी जाती है। बौद्ध भिक्षुओं के रहने वाले कमरों को 'टसक' कहा जाता है, जिनका निर्माण मुख्य गुम्पा के दायीं अथवा बांयीं ओर किया जाता है।

प्राचीन काल में हर बौद्ध परिवार में से बड़े लड़के को छोड़ एक लड़के अथवा लड़की को गुम्पा में लामा अथवा चोमो बनाकर गुम्पा को सौंप दिया जाता है। आज जिस प्रकार विकास की दर में तेजी से वृद्धि हो रही है तथा विदेशी पर्यटकों के बहुत संख्या में आने के कारण लद्दाख में पश्चिमी सभ्यता का प्रसार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अभी भी सिंधु नदी के नीचे की तरफ बसे क्षेत्रों में जहां यातायात की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। बौद्ध परिवार प्राचीन परम्परा के अनुसार अपने-अपने परिवारों से गुम्पाओं को लड़का या लड़की लामा चोमों बनाने के लिए सौंप देते हैं।

गुफा में जब किसी बच्चे को लामा या चोमों बनाने के लिए सौंपा जाता है, उस समय गुम्पा में उन्हें प्रवेश देने से पूर्व निम्न प्रश्नों को उनसे पूछा जाता है।

—क्या तुम भिक्षु (लामा) बनना चाहते हो ?

—क्या भिक्षु बनने के पश्चात् तुम बौद्ध संघ के नियमों या विनय के नियमों का पालन करोगे ?

— भिक्षु बनने के लिए सिर के बाल काटना आवश्यक है, क्या तुम अपने सिर के बाल कांटने के लिए तैयार हो ?

— क्या तुम भिक्षु के वस्त्रों को पहनने के लिए तैयार हो ?

—तुम्हें भिक्षु बनने का सुझाव किसने दिया ?

—क्या तुम्हारे माता-पिता तुम्हें भिक्षु बनना चाहते है ?

—क्या तुम्हें बौद्ध संघ के नियमों की जानकारी है ?

—क्या तुम्हें गुफा में प्रवेश से पूर्व किसी ने बौद्ध नियमों की जानकारी दी ?

उक्त प्रश्नों के उत्तर यदि बच्चा सही देता है अथवा बच्चे के उत्तर से गुम्पा का लामा सन्तुष्ट हो जाता है तब उसे रिनपोछे के पास ले जाया जाता है। रिनपोछे उससे पुनः निम्न प्रश्नों के उत्तर जानना चाहता है।

—क्या तुम हमारी गुम्पा के लामा बनना चाहोगे ?

— क्या तुम्हें लामा बनना अच्छा लगता है ?

—क्या तुम तथागत बुद्ध के बताये गये मार्ग में चलना पसंद करोगे ?

—क्या तुम अपने माता-पिता से दूर इस गुम्पा में रहना पसन्द करोगे ?

इस प्रकार जब रिनपोछे और खनपो बच्चे के उत्तरों से सन्तुष्ट हो जाते हैं तो उसे गुम्पा में प्रवेश दे दिया जाता है।

बच्चे को जब गुम्पा में प्रवेश मिल जाता है, तब बच्चे के माता-पिता गुम्पा के सभी लामाओं को चाय व नाश्ता करवाते हैं। इसे लद्दाखी में 'चिनलब' कहा जाता है।

बच्चे के गुम्पा में प्रवेश हो जाने पर रिनपोछे बच्चे को किसी वरिष्ठ लामा के अधीन रहने तथा उसकी शिक्षा की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी सौंप देता है। यह युवा लामा चूङजुम कहलाता है और अपने गुरु के अधीन बौद्ध धर्म-दर्शन का अध्ययन करता है।

जब किसी स्थान में गुम्पा का निर्माण करना होता है, उस स्थान को सर्वप्रथम शुद्ध किया जाता है। इस धार्मिक अनुष्ठान के लिए लामाओं को बुलवाया जाता है। लामा धार्मिक रिनपोछे मंत्रोंच्चार के द्वारा उस स्थान को पवित्र किया जाता है। इसके पश्चात् उस स्थान के आस-पास दीवारों और छतों का निर्माण किया जाता है।

गुम्पाओं को चूने तथा सफेद रंग से पोता जाता है। छत के सामने के हिस्से को काले अथवा भूरे से रंगा जाता है।

गुम्पाओं के मुख्य द्वार तथा अन्दर की दी दीवारों पर बिभिन्न बौद्ध देवी-देवताओं के भित्ति चित्र उत्कीर्ण होते हैं इनमें मुख्य निम्न हैं।

देवी-देवता

अर्हत

बोधिसत्व

तांत्रिक क्रियाएं

बुद्ध

आचार्य

इसके अतिरिक्त गुम्पाओं में विभिन्न कक्षों का निर्माण किया जाता है।

छोतखाङ्

दुङखा

गोनखाङ

रिनपोछे खाङ

इन कक्षों में तथागत की मूर्ति के अतिरिक्त आचार्यों देवी तथा देवताओं की मूर्तियों होती हैं। ये मूर्तियां छोटी से छोटी मूर्तियों से लेकर 30-36 फीट ऊंची होती हैं। ये मूर्तियां सोने, चांदी, चन्दन की लकड़ी, मिश्रित धातु तथा अन्य बहुमूल्य धातुओं का बनी होती हैं। परन्तु सभी बड़ी मूर्तियां चिकनी मिट्टी की बनी होती हैं, जिन्हें सोने के रंगों से रंगा जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्थर के रंगों का भी प्रयोग किया जाता है।

उक्त कक्षों में छोर्तेन तथा बहुमूल्य थंकाएं भी होती हैं। छोर्तेन छोटे तथा बड़े चांदी के बने हुए मूल्यवान पत्थरों से जड़ित होते हैं, जबकि थंकाएं कपड़े पर बने हुए पत्थरों के रंगों से चित्रित होती हैं।

युवा लामाओं को गुम्पा में परम्परागत विधि से शिक्षित किया जाता है। इनकी विभिन्न चरणों में परीक्षाएं ली जाती हैं।

बौद्ध दर्शन

बौद्ध तर्कशास्त्र

ज्योतिष

बौद्ध कला

बौद्ध चिकित्सा

बौद्ध तन्त्र

गुम्पाओं में शिक्षा व्यवस्था को सहायता प्रदान करने हेतु, लगभग 24 गुम्पाओं में केन्द्रीय बौद्ध शिक्षा संस्थान ने अपनी शाखाएं खोली हैं। इन गुम्पा विद्यालयों के माध्यम से युवा लामाओं को धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त आधुनिक विषयों जैसे—अंग्रेजी, हिन्दी, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि विषय भी पढ़ाये जाते हैं।

लद्दाख में चार बौद्ध सम्प्रदायों की गुम्पाएं हैं। ये सम्प्रदाय—ञिमापा, कारण्युतपा, शसक्यापा और गेलुवपा हैं जिनसे प्रत्येक ग्राम सम्बन्धित रहता है।

लद्दाख में गोनपाओं का संगठन और मुख्य गुम्पा
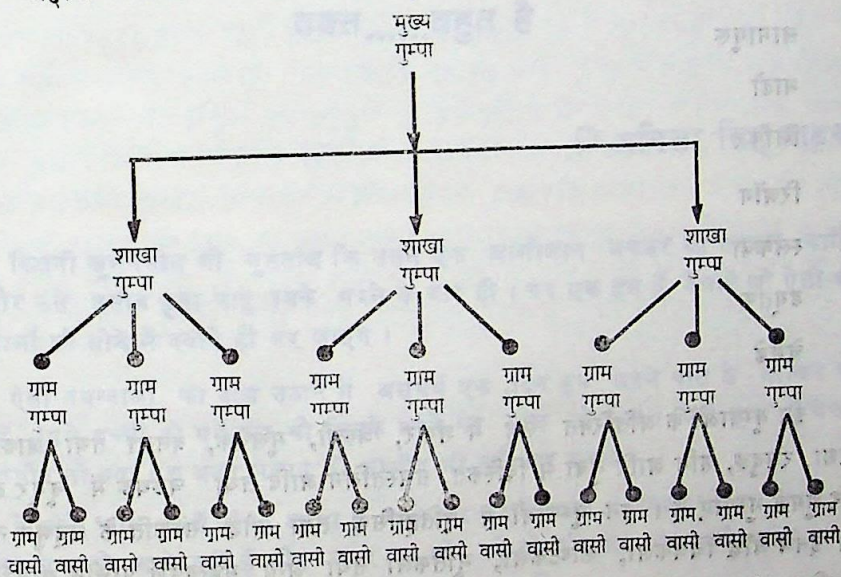
इस प्रकार लद्दाख का बौद्ध समाज धार्मिक एवं सामाजिक महत्व के उत्सवों के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में विभिन्न बौद्ध सम्प्रदाय की गुम्पाओं से जुड़ा हुआ है। जब कभी ग्रामवासियों को अधिक लामाओं की आवश्यकता होती है तब शाखा गुम्पा या मुख्य गुम्पा के खनपों या रिनपोछे के पास जाकर अपनी धार्मिक पूजन के अनुसार लामाओं की मांग करते हैं।

गुम्पा के प्रशासन तथा अनुशासन की देख-रेख के लिए लामाओं को उनके पद के अनुसार अधिकार सौंपे जाते हैं। जैसे—गुम्पा का मुख्य लामा प्रधान लामा या रिनपोछे होता है। खनपों अथवा ल्होस्पोन का दूसरा स्थान होता है। यह प्रधान लामा की अनुपस्थिति पर कार्य करता है। इसके पश्चात् छग-जोत होता है, जो आमतौर पर गुम्पा के आर्थिक क्षेत्र का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी माना जाता है। यह प्रधान लामा के व्यक्तिगत कार्यों

का भी हिसाब-किताब देखता है। गेसक्योस गुम्पा में अनुशासन-व्यवस्था को देखता है। यह लामाओं के आचरण अथवा चाल-चलन पर निगरानी रखता है। यदि किसी लामा द्वारा गुम्पा के नियम का उल्लंघन किया जाता है तो यह इसकी सूचना रिनपोछे या खनपो को देता है। कुछ विशेष अवसरों में वह स्वयं भी दंड दे सकता है। छगजोत तथा गेसक्योस को गुम्पा के लामा मिलकर प्रधान लामा की स्वीकृति पर चुनते हैं।

लद्दाख में लगभग 67 गुम्पाएं हैं। इनमें से प्रमुख गुम्पाएँ निम्न हैं।

हेमिस

ढिकसे

स्पितुक

धियाङ

लामायुरू

माढो

लिकिर

रिजोंग

स्लकवा

डग्तक

चेमडे

इन गुम्पाओं के अतिरिक्त लेह में शंकर, अल्ची, मुलबेक, वनला तथा जाङस्कर करशा, रंगदुङ, शनि आदि नुबा में दिस्कित, समस्तलिंग आदि तथा चङथंङ में चूमूर आदि और थुगजें गुम्पाएं हैं। इन गुम्पाओं में ऐतिहासिक तथा बौद्ध संस्कृति के अद्भुत नमूने हैं। इनमें बौद्ध चित्रकला, काष्टकला, मूर्तिकला तथा अन्य महत्वपूर्ण प्राचीन संस्कृति से सम्बन्धित उदाहरण देखने को मिलते हैं। अतः इनका संरक्षित किया जाना परम आवश्यक है। □

व्यंग्य

वक्त......बहुत है

□ अनिला सिंह चाड़क

कितनी खुशनसीब थी मुमताज कि उसने एक आलीशान मकबरे की तमन्ना जाहिर की और उसे नसीब हुआ चाहे उसके मरने के बाद ही। पर एक हम हैं बेचारे जो ऐसी कई तमन्नाओं को सीने में दबाये ही मर जाएंगे।

ऐसी तमन्नाओं का बोझ उठाने में असमर्थ एक दिन हम अपने पति से आखिर कह ही बैठे, हमसे अच्छी तो मुमताज थी जिसके मरने पर ताज तो बना। एक हम हैं बेचारे की उम्मीद तो क्या एक अदद मकान की उम्मीद भी नहीं कर सकते।

वे बोले 'ताज तो मैं फौरन बनवा दूं पहले मर कर दिखाओ।' अव्वल तो हम उनके झूठे प्रलोभन से मरने वाले नहीं हैं और अगर मर भी गये तो कौन-सा हम दूसरे लोक से इस ताज लोक में आकर देखने वाले कि मकबरा बना है या नहीं।

जाने क्यों हमारी आत्मा अतीत के खंडहरों में मण्डराने के लिये बेचैन रहती है खंडहरों से हमारी मुराद अतीत के उन गुजरे सालों के मकानों से है जो साल दर साल हमें उनके बारे में बयान करने के लिए प्रेरित करती रही हैं। जैसे पुरानी ऐतिहासिक इमारतें इन्तजार में रहती हैं आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया में कार्यरत अफसरों के, कि कब कोई भूले से आये और उन्हें संवारे उसी प्रकार हमारे पुराने आवास स्थल इन्तजार में है कि हम उन पर टीका-टिप्पणी करें।

खैर हमारी स्मरण शक्ति तीव्र से तीव्रतर होती गई और हमें उसने शहर के इस चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया जहां से हमने आवास खोजी अभियान शुरू कर दिया।

हुआ यूं कि हमारी इकलौती सास, इकलौती सास पर हम इसलिये जोर दे रहे हैं क्योंकि हमारी एक सहेली की तीन-तीन सासें हैं चाहे वह अपनी बहू से मिलजुल कर नहीं पर आपस में बड़े प्रेम-भाव के साथ रहती हैं। आपसी मेल-जोल के पीछे एक गूढ़ रहस्य है कि वह अपने इकलौते पति के खिलाफ नित नये षड्यन्त्र रचती रहती हैं और उनसे निपटने के नये-नये तरीके खोजती है। हां, तो बात हमारी इकलौती सास से लेकर यहां एक घुमाव ले गई पर उस दिन जब हमारी निजी इकलौती सास के पति का स्थानांतरण किसी दूसरे शहर में हो गया तो हमें भी सड़कों के चौराहे से शुरू होकर ऐसा घुमा दिया कि दिन में तारे नज़र आने लगे। घूमते-घूमते हम अपने भावी आवास घर के दरवाजे पर पहुंचे ही थे कि मोहल्ले के कुत्ते 'हाय-हाय' और 'हैलो' की आवाजों में भौंकने लगे और रास्ता रोक कर सावधान की मुद्रा में दुम उठाकर ऐसे खड़े हो गए जैसे कोई यूनियन का लीडर झंडा खड़ा करके शहर बंद का आह्वान कर रहा होता है। उनको मारने की कोशिश में जब हमने उन्हें पीछे धकेला तो गुर्राते हुए "वी विल सी यू ?" के अन्दाज में धमकाते हुए भाग लिये।

जैसे ही हमने घर के आंगन में प्रवेश किया तो 'एकदम तदरुस्त' नारी सासमयी मुद्रा में हाथ में झाड़ू लिये हमारा स्वागत कर रही थी। हम एक बार फिर सासमय वातावरण में सांसों का आरोह-अवरोह महसूस कर रहे थे और करूण दृष्टि उन पर डाल रहे थे। हमारी इस मुद्रा को देखकर शायद उन्हें तरस आ गया और झाड़ू समेत उन्होंने हमें गले से लगा लिया और झाड़ू को ही प्वाइंटर की तरह उपयोग करते हुए उन्होंने मकान के हर हिस्से से हमें अवगत करवा दिया। एक कमरा था जहां की दीवार हिलती थी जिस को हर बार बनाने की नाकाम कोशिश में एक अदद मजदूर को उसके साथ शहीद होना पड़ा पर हिम्मत न हारने वाले ठेकेदार ट्राई-ट्राई अगेन वाली थ्योरी अपनाते रहे और मज़दूरों को शहीद करवाते रहे।

और हम डर के मारे अपने लाइफ इन्श्योरेंस के कागजों के ख्याल में डूबे हुए, वहां से अगले कमरे की ओर अग्रसर हुए तो यकायक पिछवाड़े की दीवार पर हमारी नज़र गई तो पाया दीवार पर अनेकानेक छेद थे जैसे जलियांवाला बाग की दीवारों में हैं। हमें उस दीवार की तरफ अति भयभीत मुद्रा में ताकते हुए देख वह ताड़ गई और बोली 'गुड्डू के पापा शुरू से ही पुलिस में थे जब वह अपराधियों को मारने में असमर्थ होते थे तो अपना निशाना इन दीवारों को बनाते थे। लेकिन अब वह क्या करते हैं हमने डरते-डरते पूछा। वह तपाक से बोली 'ठेकेदारी'। किन्हीं अज्ञात कारणों वश उन्हें नौकरी से निष्कासित कर दिया गया था खैर इन छिद्रों से आप रोशनदानों का काम ले सकती हैं'। और यह जो खरगोश आपने पाले हैं ? हमने प्रश्नमय मुद्रा में पूछा "हां यह मासूम जानवर बस एक कोने में पड़े रहेंगे आपका कुछ नहीं बिगाड़ेंगे।" हमारे मन में आया कहीं हमारा यहां बसना भी इनके शौक का हिस्सा तो नहीं है हम निहाल हो गये उनके शौक पर। पर मरता क्या न करता गुमराह तो हम हो ही गये थे, अगला मकान तलाशने की कोशिश में कहीं संसार से ही न गुम हो जाएं इसलिये जीवन की बची-खुची सांसें लेने तक हमें वहां रहना पड़ेगा।

पर 'जाको राखे साईयां मार सके न कोय' वहां हमें जिन्दगी की आखिरी सांस नहीं आई और दुर्घटनाओं की चरम सीमा पर पहुंचने से पहले ही हमारा तबादला हो गया।

आवास की समस्या फिर मुंह बाये खड़ी थी हमारे सामने अतीत के खड़खड़ाते खंडहर थे और आगे ठाठें मारता जिन्दगी का खिलखिलाता हसीन समन्दर जिस में हम ऐरे-गैरे मकानमें रहकर डूबना नहीं चाहते थे बल्कि उसका आनन्द लेना चाहते थे।

पर होनी को कुछ और ही मंजूर था। उड़ती-उड़ती खबर हमारी ननद की सास जो कि उम्र की शताब्दी पार करने ही वाली थी को न जाने कैसे पहुंच गई कि हम मकान की तलाश में हैं। रिश्तों की नजाकत देखते हुए हमने उस आधी शताब्दी से खाली पड़े मकान में रहने की मंजूरी दे दी ताकि उनकी उम्र के अन्तिम पड़ाव में एक अदद किरायेदार रखने की तमन्ना पूरी हो सके पर आश्चर्य की बात थी कि इस मकान के नैन-नक्श भी पहले मकान से बहुत मिलते थे, फर्क इतना था कि पहले वाले मकान की अनगिनत आंखें यानि रोशनदान दीवारों में थे और इस मकान के छत में जो चिमनी का काम तो देते ही थे और साथ में बरसातों में शॉवर का काम भी दे जाते थे! फिर सोने पर सुहागा यह कि मालकिन की गर्दन लगातार पेन्डुलम-सी हिलती थी और उनकी गर्दन हिलने की अदृश्य शक्ति से अविभूत हुए हम उनका हर हुकम मानने के लिये तैयार होते, जो सुई में धागा डालने से लेकर उनके चूल्हे में आग झोंकने तक जारी रहता जिससे हमारी सांसों में अवरोध पैदा होता रहा और हमारे सारे अरमान चूल्हे की आग में स्वाहा होते रहे। हम उनके दामाद और बेटी की एकमात्र सुन्दर जोड़ी को सुखमय गृहस्थी के लिए कुकर से लेकर पंखे तक सारे साधन जुटाते रहे और अपनी चहुंमुखी भूमिका निभाते रहे।

पर रोंगटे खड़े कर देने वाले नियति के इस क्रूर मजाक में भी हम अरमानों के हिंडोले में झूल-झूल कर ताजमहल बनवाने की बात अपने मन-मस्तिष्क से नहीं निकाल पाये हैं जब भी इस का जिक्र पतिदेव से करते हैं तो कहते हैं "ठहरो पहले स्विस बैंक के एकाउन्ट से पैसा तो निकलवाने दो। खुदा करे उन का यह काल्पनिक एकाउन्ट स्विस बैंक में बरकरार रहे और हमारे ख्वाबों के ताजमहल हमारे सरकारी क्वार्टर की ईंट-दर-ईट टूटती और साथ-साथ अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से जीती दीवारों में सलामत रहे। वैसे सपने पालना कोई बुरी बात नहीं है लोग मुर्गी पालते हैं, बकरी, गाय पालते हैं हमने सपने पाले तो कौन-सा जुर्म किया। आखिर हम अपने ताजमहल के ख्वाबों की ताबीर के लिये शे'र दोहराने से बाज नहीं आएंगे।

आधी से ज्यादा शबे-गम काट चुके हैं

अब भी अगर बन जाओ तो वक्त बहुत है?

□

कविताएं

कितने दिन

□ निर्मल विनोद

अपने से बिना मिले
कितने दिन बीत गये

चक्र—
रात देर तक
सवेर से चला ऐसा
रहट घटी सी नदी
प्रवाह नहीं थम पाया
लगता है
अनवरत उलीचते गए
सब क्षण
यों मानों
सहज-भाव-संवेदन
मुर्झाया
गहन कूप
रीत गए
अपने से बिना मिले
कितने दिन
बीत गए

औरों को मिलने से
ही कब फुर्सत मिली
चाहे से कब
एकान्त कहीं मिल पाया

आरोपित मुस्कानों
औपचारिक वाक्यांशों
के जंगल में भटका
मन बालक अकुलाया

होठों के गीत गए
अपनों से बिना मिले
कितने दिन बीत गए

□

हंसो बिजूखे !

हंसते रहना
कभी न रोना,
राम कसम है तुम्हें
हंसो रे हंसो बिजूखे !
धूप-मेंह-पाला संध्या हो
दिवस-रात हो
सुख-हो दु:ख
कि विजय हुई हो
मिली मात हो
अश्रु मोतियों की माल
तुम नहीं पिरोना,
कभी न रोना,
मोहन की मुरली हो
राधा धन मृदु स्वर हो
हवा बसंती बहे खेत में
या पतझर हो

समरस रहना
गाना सदा
        छन्द मिठलोना
        कभी न रोना

सुनो !
तुम्हारी नियति यही है
        खड़े रहो तुम
चलें आंधियां
तूफां आयें
        अड़े रहो तुम,

□

तुम रखवाले
तुम्हें बचाना पीला सोना
        कभी न रोना
राम-कसम है तुम्हें
        हंसो रे हंसो बिजूखे !

□

भोर के उजास में

□ राकेश वत्स

भोर के उजास में
देखा आज मैंने
मकड़ी के जाले को
फूलों की डाली पर तना
और दूसरी तरफ
उसी डाली पर
नन्हीं-सी चिड़िया का
प्यारा-सा घोंसला बना
घोंसले में चिड़िया के नन्हें बच्चे
चिचियाते हैं
चिड़िया देती है उन्हें चुग्गा
वही सिखाती है उनको
जो उसने है भोगा
जाले में चुसे हुए
जीवन से रहित खोल
भंवरों और तितलियों के
हवा लगने से हिलते हैं
जीवन और मृत्यु के
ऐसे हृदय साथ-साथ
सभी जगह मिलते हैं

□

घर परिवार

उड़ते परिंदे
स्वच्छ जल में
भीगने का आनन्द भूल
कातर आवाज़ में
दिलासा देते हैं
दूर किसी घोंसले में हुमकते
अपने नादान बच्चों को

घोर गर्जना करते हैं बादल,
तूफानी हवाओं का शोर
दब कर रह जाती है उनकी
ममता भरी बेकस आवाज़
इस सब में भी
खींचे लिये जा रहा है उनको
कौन-सा यह जादू
बच्चों के हाथों में जैसे
खिंचती चली जाती है
उड़ती पतंग

मैं भी इस बारिश में
लौट रहा हूं अपने घर
कदम-कदम आंखों के सामने
कौंध-कौंध जाता है
अपना परिवार
टपकती हुई कच्ची पुरानी छत,
छेदों वाली
एक ही चादर में लिपटे
रीता गीता सुभाष,
चौखट पर खड़ी
बादलों की तरफ निहारती

अनुराधा की सूनी आंखें

उस की बेचैनी को देख

बार-बार रंभाती है जमना

सूंघती नवजात बछिया को

चाटती बार-बार

उसके कान, माथा और पुट्ठे

आखिर कब तक होगा

लोगों से

खड़े रह कर पेड़ों के नीचे

काले बादलों के फटने का

इन्तज़ार

समुद्र और सूरज

युद्ध की बात करते हैं आप !

सूरज और समुद्र में

रोज युद्ध होता है

सूरज समुद्र को चाहता है सुखाना

और समुद्र बादलों में

सूरज को कैद करना,

समुद्र कुहरा फैला कर

सूरज को अन्धा बनने देता है

किरणें पक्षी बन

चुग लेती हैं अन्धापन,

सरदी में रोज होता है

यह अद्भुत खेल,

बच्चों के बीच होती

जैसे आंख मिचौनी

भरपूर प्रकाश

□ डॉ० जयसिंह नीरज

मैंने तो उठा कर रख दिये थे
तीर कमान
बंद हो गया था अपने दायरे में
पर तुम अन्धेरे बन्द कमरे में
रोशनदान की तरह खट्ट से खुल पड़े,
और मेरे अन्तर में फैल गया
प्रकाश ही प्रकाश,
मैं कब से इन्तजार में था
इस सुहानी घड़ी के
पर जिन्दगी भर भटकता रहा,
जंगल दर जंगल,
लहू लुहान होता रहा लक्ष्य पाने के लिये
कभी नहीं मिला अंजुरी भर पानी
कि मैं कर सकूं अपने पपड़ाये होठों
को तरोताजा
आज जिन्दगी के आखिरी क्षणों में
तुम भर कर लाये हो
मंगल घट
मैं पगलाया सा घूम रहा हूं
इधर-उधर
सोच नहीं पा रहा हूं
क्या और कैसे करूं स्वागत
इस भरपूर प्रकाश का

□

शाम होते ही

शाम होते ही अन्धेरा
घेरने लगता है मुझ को
अबाबीलों के झुंड की तरह
पंख फड़फड़ाने लगती हैं
अनेक आकांक्षाएं एक साथ
सूरज के डूबते ही
डूबने लगता हूं मैं
कोई पदचाप उसांस भरी
पड़ती है दिल पर
और धीरे-धीरे घिरने लगता है
मेरा संसार असंख्य दीपों से
रोशनी की आड़ी तिरछी रेखाएं
एक दूसरे को भेदती,
क्यूबिस्ट स्टाईल की एक
पेंटिग उभर कर
आ बैठती है मेरे सामने
प्यार और प्रकाश से भरपूर
कौन हो तुम ! बोलो, कौन हो तुम,
एक साथ बज उठते हैं
वाद्ययंत्र
होली खेलते सार्थक शब्द
कविता को अपनी गिरफ्त में लेते
अब यह रात अन्धेरी नहीं
शरद की पूर्णिमा थी
दूध नहायी तलैया
गोपियों सी रास रचाती
यादें और यादें
मैं इस असीम आनन्द में
डूब जाना चाहता हूं,

□

बच्चा

बच्चा हो गया समझदार
वह मिट्टी के घरौंदे नहीं रचता
गली मुहल्लों के बच्चों के बीच
नहीं भरता किलकारियां
अपने दायरे से
तकता रहता है बचपन का खेल
सीख गया है वह
लकड़ी मिट्टी के खिलौनों से दूर
चार किलो का बस्ता उसकी पीठ पर
वह बड़ों की मुद्रा बनाए
जल्दी बजुर्ग हो गया है
हर मेहमान के सामने
वह टेप बन जाता है
अंग्रेजी पोयम का
पीठ की थपकियों ने
उसे गमले में रोप दिया है
वह कटा छटा बोन्साई पेड़
किधर जा रही हैं उसकी जड़ें
धरती से उखड़ी हुई
गुंजलक बनी गमले में
सिमट रही हैं दिन व दिन,
वाकई ! छोटा सा बच्चा
समझदार हो गया है

□

नयी कलम

काश ! ऐसा होता

□ सीमा खजूरिया

किसी को हाथ नहीं देता खुदा
किसी को कुछ करने का होता नहीं शौक
किसी को मिलती नहीं आज़ादी
किसी को होती नहीं कोई रोक
किसी को दौलत नहीं देता खुदा
किसी को होती नहीं सम्भालने की तमीज़
कोई रह जाता है खुशी से दूर बहुत दूर
किसी को मालूम नहीं होती खुशी की कीमत
नहीं होती आंखें किसी की
और किसी को नहीं होती देखने की तमीज़
किसी के होते हैं फरिश्ते भी
अक्ल से परे बहुत परे
और कोई अक्ल को अमल में लाने
से रहता है परे
कोई होता है कम उम्र और मिल जाता है मिट्टी में
और जो जीते हैं वे
जानते नहीं जीने की कद्र
किसी के पास होती नहीं नाव
और कोई रह जाता है तूफान की पहचान से दूर
काश ! ऐसा होता सब,
एक साथ ! तो दुनिया 'दुनिया' जैसी होती । □

आज़ाद होने की तलाश में एक यायावर

□ विनोद शाही

यायावरी के लिए पैदा हुए थे हम/यायावरी भीतर से बाहर बाहर से भीतर की/रिश्तों की नदी में डुबकी लगा कर कभी कभार तट पर से बटोरने को/सीपियां घोंघे शंख और रंगीन पत्थर/इस उम्मीद में कि कभी तो लगेंगे रत्न हमारे भी हाथों में/और हुआ यह कि बटोरते-बटोरते रंगीन पत्थर हो गये हमें उन्हीं से मोह/लादे हुए पीठ पर उनकी भारी गठड़ी/शंकित चलते रहे फिर भी/चोरों से सावधान होकर जो रत्नों के भ्रम में लूट लिये जाते थे/हमारी ऐसी ही व्यर्थ मूर्खताओं को हम से/और हम थे कि ठगे जाकर कभी-कभार रोते भी चिल्लाते भी।

ओ मेरे हम सफर ! अपनी गठड़ी को फैंक भारहीन मुक्त पहले तुम होओगे/और या कि करोगे प्रतीक्षा पहले मेरे आज़ाद होने की ?

अपनी कविता के इस अनाम हम सफर के रूप में आज अचानक सुरेश सेठ का चेहरा कैसे उभर आया, कहना मुश्किल है ? मेरा ख्याल था कि मेरी कविताएं कभी इतनी ठोस नहीं होतीं कि उनके पीछे छिपे चेहरों को खुद मैं पहचान पाऊं, फिर भी अचानक जब यह तरल हंसी और संजीदा वेचारगी वाला सुरेश सेठ का चेहरा शायद वेवजह ही किसी वेवाक होशियारी के साथ अपनी हिफाज़त करता दिखाई दिया तो मुझे लगा, वहां भीतर गहरे में जरूर कोई न कोई ऐसी ज़मीन है, जहां, जिस पर हम हमसफर की नाईं चला करते हैं और इस बात में कहीं कोई दिक्कत नहीं है कि मैं इस कविता की मार्फत इस चेहरे से मुखातिब हो सकूं।

यह हाल की कुछ घटनाओं से जुड़ी बात है, जिसके मायने, अगर मुक्तिबोध की ज़ुबान
में कहूं तो, काफी हद तक एक 'आणविक तेजस्विता' से भरे हैं, बतौर साहित्यकार सुरेश
सेठ मेरे अग्रज हैं कोई बीस साल की बेबूझ अन्तरंगताओं का रिश्ता रहा है उनके साथ, एक
ऐसा रिश्ता, जिस का ग्राफ छोटी-छोटी वेवलेंग्थस वाली ऊंची-नीची तरंगों से बनना शुरू
हुआ और अब आकर वह बड़ी तरंगों वाली ऐसी स्थिति में आ गया है जो सीधी रेखा के
पहले वाली शक्ल से मेल खाने लगा है हालांकि जानता हूं कि सीधी रेखा वाला मामला
खासा टेढ़ा है और वहां तक आने के लिए जाने अभी कितना सफर और करना है, फिर भी
आश्वस्ति की बात यह है कि यह मामला सही दिशा पकड़ता मालूम हो रहा है, जाने कितना
सफर और .....यह भाव निराशा का नहीं है, इस यथार्थ बोध का है कि मंज़िल के करीब
थके पांवों में आई स्फूर्ति भी अक्सर गति बढ़ाने में इसलिए मददगार नहीं होती क्योंकि वह
एक नई विवेकशीलता के भार से दबी बार-बार रुक कर, आसपास का जायज़ा ले लेकर
ही, आगे कदम उठाने के सूक्ष्म आयाम में उतर जाया करती है, शायद यही वजह है कि अभी
हाल ही में जब मुझे साहित्यकार सुरेश सेठ के भीतर बैठे अभी तक अपरिभाषित सार-
व्यक्तित्व को बीच-बीच में नींद तोड़ने की कसमसाहट से भरा पाया तो एक इशारा ज़रूर
मिला... ..इस व्यक्ति के भीतर भी मेरा कोई हमसफर ज़रूर होना चाहिए और इस तरह
वे मेरे लिये हाल ही के इधर के दूसरे मित्रों ई० के० राज और भारत भूषण भारती के
साथ तय हो रहे एक गहरे सफर में अचानक शामिल हो जाने की गवाही देने लगे।

सही दिशा में व्यक्तित्व की तब्दीली कोई आम घटना नहीं है, राज और भारती मुझे
जिस सफर के सहज पथिक लगे, उसमें किसी के अचानक परिवर्तित होते हुए शामिल होने
की बात मुझे अधिक कीमती लगती है, क्योंकि वह इतनी अधिक डायनेमिक होती है कि
उसके बहाने से हम बहुत कुछ अदेखा-अचीन्हा पहचानने की स्थिति तक पहुंच सकते हैं, दूसरी
बात एक और है, आम तौर पर समझा यह जाता है कि अपने समकालीनों की बाबत लिखना
खतरनाक होता है, क्योंकि फिर हमें खुद को उनकी प्रतिक्रिया झेलने लायक बनाना पड़ता
है, मैंने सुरेश सेठ की एक ऐसी ही किताब पढ़ी—'शहर वही है'? वह ज्यादातर उनके
समकालीनों की बाबत है, फिर उनका देवेन्द्र इस्सर पर लिखा रेखाचित्र पढ़ा और यह
आश्वस्ति हो गई कि सुरेश सेठ की दिलचस्पी के केन्द्र जीवित-जीवंत व्यक्ति व स्थितियां हैं
और इतिहास का मृत-अंश पचाने लायक मेदा भी उनके पास है, इसलिए भी उनकी ही
बाबत लिखना और महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह उनके लेखन की प्रक्रिया को पकड़ने
में भी मददगार होता है, लेकिन यह मेरी दिलचस्पी का केन्द्र नहीं है, एक गौण उपलब्धि
है, जो इस खोजबीन के साथ आप ही आप सहज रूप में हाथ लग जाती है।

तो मैं बता रहा था कि यह घटना हाल ही में घटनी शुरू हुई सुरेश सेठ, जहां बोलना
मुनासिब न समझते, कई दफा चुप बैठे रहना पसन्द करने लगे (हालांकि साहित्य और उससे
जुड़ी महफिलों में वे अभी तक पहले की तरह ही जम जाना पसन्द करते थे) कभी-कभार
की यह चुप्पी एकदम 'जेनुइन' चुप्पी ही हो, सो बात भी नहीं थी कई दफा यह चुप्पी किसी
बात के प्रति आक्रोश या विरोध प्रकट करने के लिए भी ओढ़ ली गई मालूम पड़ती थी,
लेकिन जिस तरह से भारतीय स्त्रियों ने इस टेकनीक की हथियार के तौर पर इस्तेमाल

करने में महारत हासिल कर रखी है, उतनी महारत उनमें कभी दिखाई नहीं दी। वे बड़ी जल्दी अपने आक्रोश के कारण को व्यक्त कर उससे निजात पाने की कोशिश भी साथ ही करते दिखाई देने लगते थे, वे तनाव में ज्यादा देर रह नहीं पाते, ये बात जितनी सच है उतनी ही सच यह बात भी है कि उनके बहुत से तनाव खुद उनके अपने रचे-बुने भी होते हैं, अभी पीछे वे मुझ से बात करते थे, वे अपनी किसी साहित्यकार महिला-मित्र की साहित्यिक-प्रतिस्पर्धा से निकले उसके व्यवहार से खासे परेशान थे, तीन-चार दिन वे इस परेशानी के तनाव के आवेश में जिए। महिला-मित्र के प्रति चुप्पी बनी रही, पर उसके तमाम दूसरे मित्रों तक उन्होंने अपनी नाराज़गी पहुंचा दी। दस पन्द्रह दिन बाद फिर उन्होंने वही चर्चा छेड़ी तो मैंने उनसे पूछा —आप इस तरह की बातों को भूल नहीं सकते ?

—मैं इतना संवेदनशील हूं कि परेशान न होना मेरे बस में नहीं पर मैं उसे कह कर उनसे जल्दी निकलने का तरीका जानता हूं।

—मुझे लगता है, आप गहराई के लेखक हैं और लेखक हर वक्त किसी वैचारिक-भावनात्मक आवेश में उबलता रहता है। अब वह आदत आपके सामान्य व्यवहार का हिस्सा हो गई है, लेकिन क्या ऐसा करके आप अपनी नकेल दूसरों के हाथों में नहीं दे देते ? चलिये, मैं खुद को आपके सामने रखता हूं, अगर मैं चाहूं तो आपको परेशान करके, अभी तीन-चार दिन के लिए मानसिक तौर पर थोड़ा बीमार कर सकता हूं, इस तरह दूसरों को खुद पर शासन करने का अधिकार देना क्या आपको बाजिब लगता है ?

वे मेरी बात सुन संजीदा हो गए, "मैं आत्म विश्लेषण कर सकता हूं। मैं जानता हूं, मैं बदल रहा हूं, पर तब्दीली एक खासी मुश्किल प्रक्रिया है। सब कुछ अचानक, एक साथ तो नहीं हो जाता।"

अब तक जो कुछ हुआ, वह अगर 'अचानक, एक साथ' नहीं हुआ तो इतना धीमे भी नहीं हुआ कि आप उसे उसके प्रत्येक कोण से पकड़ कर ठीक से पहचान सकें। अचानक ये हुआ था कि सुरेश सेठ की दिलचस्पी उपन्यासों से ज्यादा 'ओशो' में दिखाई देने लगी थीं और हमारी आपसी बातचीत के केन्द्र में साहित्यिक राजनीति की जगह अचानक ज़िंदगी की छोटी-मोटी समस्याएं और कभी-कभार दर्शन, मनोविज्ञान, संस्कृति या अर्थशास्त्र आने लगा था। पहले वे अपनी बाबत कहना काफी पसन्द करते थे, अब अपनी बाबत सुनना भी उन्हें रुचिकर लगने लगा था—खास तौर पर वह 'सुनना' भी जो प्रशंसात्मक न होकर, ज्यादातर आलोचनात्मक बना रहता। अब दोस्त-यार जितने संजीदा और ईमानदार होते हैं, उतने ही बेबाक और आपको कभी न बख्शने वाले भी, वे अक्सर ये ध्यान रखते हैं कि आप साहित्य की दुनिया से जिस मोहक 'आत्मबिंब' को साथ लिए उनके साथ गुफ्तगू करते हैं, आपका वह आत्मबिंब उनके आप के साथ संवाद में कहीं कोई रुकावट तो नहीं बन रहा, जहां ज़रा-सी भी ऐसी कोई गुंजायश होती है, वे उस आत्ममुग्धता को तोड़कर आपको आईना दिखा देना खासा पसन्द करने लगते हैं तो ऐसे दोस्तों से घिरे सुरेश सेठ को मैंने 'अचानक' हल्के अपमान की हद को छूती मज़ाकबाज़ी तक को पहले बर्दाश्त करते, फिर ज़रा रिज़र्वेशन के साथ लगभग स्वीकार करते भी देखा-पाया।

सुरेश सेठ के व्यक्तित्व को भीतर कही बदलने में उनके ऐसे दोस्तों की कितनी बड़ी भूमिका है, इसे एक न एक दिन वे ज़रूर मान जाएंगे। हालांकि यह बात तब निर्विवाद होकर स्थापित हो जाएगी कि भीतर के बेबूझ सफर पे निकलने की हिम्मत करने का श्रेय केवल और केवल उसी को दिया जा सकता है जो उस सफर पर निकलता है।

व्यक्तित्व की ऐसी तब्दीलियों की बुनियाद कहां है, किस में है? सुरेश सेठ के बहाने से अगर मैं इसे रेखांकित करता हुआ उनकी सांस्कृतिक विरासत पर उतर जाऊं तो यकीनन कुछ सुराग-सूत्र मिल जाएंगे। मूलत: एक आर्य समाजी परिवार और प्रकटत: एक ऐसा साहित्यकार जो लचीले तौर पर प्रगतिशीलता का दम भरता है, साहित्यकर्म आत्मकथा लेखन नहीं होता, पर गहरे में वह लेखक की प्रच्छन्न आत्मकथा ही तो होता है—उसकी आशाएं, आकांक्षाए, समझ, विश्लेषण, रिश्तों का बोध और उसकी मुक्ति—यही तो उसका साहित्य है और अगर यही वास्तविक आत्मकथा नहीं तो और किसे आत्मकथा कहेंगे? जिन्दगी में घटी घटनाओं के इतिहास-परक ब्यौरे—आत्मकथा के इन पारंपरिक रूपों से ऊपर उठकर गहरे आत्मेतिहास को जानना-समझना ज्यादा अहम है और इस लिहाज से साहित्य और आत्मकथा अविच्छिन्न हैं। भारत जैसे मुल्क में गहरी सांस्कृतिक विरासत लिए हर सजग सचेत आदमी प्रकटत: प्रगतिशील है—लेकिन मार्क्सवादी सांचों में ढलने-खपने से खुद को बचाता हुआ। मुझे लगता है यह सुरेश सेठ का औसत चेहरा नहीं, भारत के अधिकांश मध्यवर्गीय लेखकों का चेहरा कमोवेश इससे मेल खा जाता है। पीछे सुरेश सेठ के साथ एक भेंट वार्ता के दौरान मैंने उनसे पूछा कि ऊपर से जिन्दगी के साथ शुगल-सा करते उनकी कहानियों-व्यंग्यों के पात्र गहरे में जीवन के विरोधाभासों की संजीदगी से उकेरते हैं—ये कैसी पोलराइज़ेशन है उनमें? यह सवाल एक गम्भीर वजह से उठाया था, हमारे आपस के बहुत से अनौपचारिक संवादों से कई दफा हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि जो आदमी ज़िन्दगी में खुल कर हंस सकता है, उसके मुक्त होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। हमेशा की तरह ऐसा टेढ़ा-सा सवाल सुन, पीछे मेरी संजीदा शरारत को भांप वे पहले तो खुल कर हंसे। लगभग आध मिनट के लिए रुक-रुक कर ठहाके लगाते रहे फिर गम्भीर होकर बोले—'अगर सवाल का जवाब चाहिए तो मुझे गम्भीर होने दो' पता नहीं इस वाक्य के पीछे उनकी क्या मंशा थी। हालांकि मैं ये कहना चाहता था कि सुरेश भाई! ये ठहाके जो अभी आपने लगाये, वे भी कुछ कम गम्भीर नहीं थे। पर मैं यह कहता तो उनकी उस गम्भीर-कोशिश की लय को तोड़ देता, सो चुप रहा जवाब में वे यह सूत्र बटोर लाये कि मेरे पात्र ज़िन्दगी पर नहीं, खुद पर हंसना पसन्द करते हैं। उन्होंने ये कला चार्ली चैपलिन और राजकपूर से सीखी है। मुझे याद आ रहा था कि एक दिन रेल में साथ सफर करते हुए उन्होंने कहा था, जब भी मैं अपने आप पर, अपनी की गई किसी मूर्खता पर, हंस लेता हूं, एकदम तरोताज़ा और हल्का हो जाता हूं सुरेश सेठ ने भेंट वार्ता के दौरान इस आत्म-मंथन को आगे बढ़ाया, उन्होंने कहा कि भारत जैसे गरीब मुल्कों के लोगों के पास शोषण और भुखमरी की यन्त्रणा से निजात पाने के लिए सिवाय इसके और क्या रास्ता है कि वे खुद पर हंसते हुए कोई 'रमइया वस्ता वइया' गाते-बजाते फिरें। उन्हें और उधेड़ने की नीयत से मैंने फिर पूछा, आजकल तो प्रगतिवाद की बात कोई भी नहीं करता। रूस के गिरने के बाद बहुतों ने दल-बदल लिए हैं। यूरोप-अमरीका के नवमार्क्सवादी वर्ग-चेतना से अधिक संस्कृति-चेतना की

बात करते हैं और आप हैं कि अभी तक लचीले तौर पर प्रगतिवाद को अपनाए हैं, इसके पीछे क्या रहस्य है ? सुरेश सेठ ने कहा कि वे अपनी ज़मीन से प्रतिबद्ध हैं, नारों सांचों वाला प्रगतिवाद उनका नहीं है । उन्होंने हमेशा कट्टर मार्क्सवादियों का विरोध किया पर जिस चेतना का कोई विकल्प न हो । उसे छोड़ना ठीक नहीं, उसका विकास करना ही सही है, अपनी कहानियों के ज़रिये वे जीवन की समस्याओं से दो चार हुए हैं, पंजाब में आतंकवाद के दौर में दहशत का विकल्प उन्हें अपनी रचनाधर्मिता में ही दिखाई दिया, ये कट्टर धार्मिक-सांप्रदायिक चेतना उन्हें स्वीकार्य है और न उसका मार्क्सवादियों जैसा उन्मूलनकारी विरोध, वे तो बीच के रास्ते के पथिक हैं और रहेंगे ।

बीच का रास्ता खोजना खासा मुश्किल काम है । दिशा सही हो तो इतना काफी है और इस बाबत आश्वस्त हैं सुरेश सेठ, लेकिन इस ख्याल के द्वारा पकड़ लिये जाने पर वे रास्ते पर भटकना भी पसन्द करते हैं---यायावरों की सही शिनाख्त इसी बात से होती है कि वे कितना भटके हैं ? अभी कल ही उन्होंने मुझ से कहा, 'सुख से दुख बेहतर हैं' मैंने स्वीकार किया, फिर उन्होंने कहा 'इसलिए कि सुख भटकाएं नहीं, आदमी को दुख की कामना करनी चाहिए' मैंने कहा, गलत, पहली बार सही दिशा की शिनाख्त है और दूसरी सही दिशा पकड़ कर भी भटकने का सुख लेने की यायावरी, मुझे लगता है दुख की कामना वही करता है जिसे अभी सुख की कामना की व्यर्थता दिखाई नहीं दी, सुख में ही छिपा दुख जो नहीं देखता, दुख में सुखी होने की कोशिश करता है । बीच के रास्ते को इस तरह मैं साधना चाहता हूं और अपनी तरह की यायावरी के साथ सुरेश सेठ भी......ओ मेरे हम सफर ! अपनी गठड़ी को फेंक भारहीन मुक्त/पहले तुम होओगे और या कि करोगे प्रतीक्षा/पहले मेरे आज़ाद होने की । □

संवाद

कोमल अनुभूतियों की चितेरी सुरजीत कौर से डा० कीर्ति केसर की बातचीत

पता चला कि सुरजीत अपनी नयी कला प्रदर्शनी परियाला में लगाने वाली है। जिज्ञासा हुई देखूं उसने नया क्या बनाया है। मिलने का समय पहले से तय था। मैंने देखा कि सुरजीत के घर में एक कलाकार की सुरुचि उसके हाथों की कलात्मकता हर दीवार हर कमरे में महसूस किया जा सकता है। रंग सुगन्ध और प्रकृति सुन्दरता को रचने वाली सारी चीजों का संग्रह उसके घर में है। हर सजावट में एक सुघड़-सा सन्तुलन मुझे महसूस हुआ। वातावरण नितांत घरेलूपन का ठहराव नहीं है। हर चीज़ में एक गति हैं लय है। इस सबके बीच सुरजीत मुझे अक्सर कुछ रहस्यमयी सी लगी। पर अपने इन रहस्यों को भी वह बड़े सन्तुलित भाव से खोलती हैं। उत्तेजित सिर्फ 'आदमी' या पुरुषवादी सामाजिक, सत्ता' के नाम पर ही होती है। साहित्य में सृजनात्मक साहित्य में भी वह खासा दखल रखती है। कभी-कभी लगता है कि वह पहले कविता लिखती है फिर पेंटिंग बनाती है कि कविता को कहीं छुपा देती है। साहित्यकारों के साथ उसका खासा मेलजोल है। राजनीति और धर्म से बहुत बचती है। ये दोनों चालचलन उसकी जीवन शैली के गुप्त रहस्य हैं जिन्हें वह कभी-कभी भावुक क्षणों में ही खोलती है। असल मुद्दे पर लाने के लिए मैंने रस्मी बातों का सिलसिला शुरू करते हुए मैंने पूछा :

—तुम्हारे अन्दर यह लगन कैसे जागी ? बचपन में माता-पिता ने जगाई ? या बाद में ?

—मेरा जन्म साधारण मध्यवर्गीय परिवार में रंजीतकोट जिला शेखूपुरा (अब पाकिस्तान में है)—में हुआ था। पाकिस्तान बना कुछ समझ तो नहीं, बहुत छोटी थी पर उसकी जो पीड़ा-दर्द-कठिनाइयां परिवार ने झेलीं उसका असर मेरे बचपन पर भी पड़ा। बड़ी होती गई समझ आने लगी और समझ आ गई तब तक घर में विभाजन को लेकर कई कई अनहोनियों के किस्से, उजड़ना, बसना, अपनी जमीन से उखड़ना

पराई जमीन में पनपना दुःखों और मुश्किलों के साथ जूझना—इस सबने मेरे अन्दर धर्म के प्रति बहुत अरुचि सी पैदा कर दी। धर्म मुझे एक ध्वंसकारी शक्ति ही लगता रहा है। आदमी अच्छा-भला-नेक इनसान बने यह तो मेरी समझ में आता है परन्तु धर्म और आम जिन्दगी बीच जो फासला है यानि जो असंगति और विसंगति है उससे मुझे लगता है कि हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और हैं इसलिए मैं इससे दूर हैं।

—इस वस्तु स्थिति ने तुम्हारे कलाकार को प्रभावित किया ?

—मैं तो समझती हूं मैं उसी की उपज हूं। हुआ यह, कि इससे अकेलापन-सूनापन एक अजीब तरह का शून्य मेरे आस-पास बनता गया। हालांकि घर था, परिवार था—समाज था, सम्बन्ध थे नौकरी भी मिल गई पर भीतर का शून्य दिनों-दिन जितना बड़ा होता गया मेरा इंडिविजुअल-वैयक्तिक वजूद उतना ही ज्यादा विकसित होता गया। बस यह मेरा इंडिविजुअल ही मेरा कलाकार है।

—कलाकार को विकसित करने में घर के लोगों का कोई योगदान ?

—नहीं, कोई खास नहीं। पिता ठेकेदार थे। अकेले बैठ कर मैं चित्र बनाती थी, सो बनाती थी ठीक है। किसी को कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता था। उसे प्रोत्साहित करने की कोशिश की जरूरत किसी को नहीं महसूस होती थी। एम० ए० शादी के वाद किया। बस रास्ता मैंने खुद खोजा सम्बन्धों के दखल से रक्षा मेरे पति ने की। उनका सहयोग मुझे पूरा मिलता रहा।

—परमात्मा या ईश्वर और अध्यात्म में विश्वास करती हो ?—रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसी आनन्दानुभूति कुदरत के बीच या उससे अलग कभी महसूस हुई ? इससे कलाकार का कोई रिश्ता... ?

—हां मुझे ईश्वर पर विश्वास है। मुझे लगता कोई शक्ति है जो इस सृष्टि को इतने कायदे और सलीके से चला रही है। इतनी उलझी हुई सृष्टि का संचालन कर रही है। इतनी सुन्दरता की सर्जक है मेरी समझ में वही फोर्स 'गॉड' है 'ईश्वर है। कुदरत को हैरान कर देने वाले चमत्कार मेरे लिए आनन्द की अनुभूति है। यह अनुभूति है जो मेरे इंडिविजुअल को कलाकृतियों को रचने की प्रेरणा भी बनती है जो ऊर्जा भी बनती है। और इस सृजन की स्थिति जो आनन्द है जो तृप्ति है वही मेरे लिए अध्यात्म है। मैं योगियों मुनियों के अध्यात्म को तो नहीं जानती रवीन्द्रनाथ का अध्यात्म मेरी समझ में आता है। यह स्थिति मुझे अकेलेपन से सम्पन्नता की ओर और असुन्दरता के बीच ले जाती है। यह भावानुभूतियां, मनःस्थिति भरे चित्रों में अंकित हो जाती है। मैं एकांतिक स्थिति में चित्र ही नहीं बनाती पढ़ती भी हूं। कुछ भी पढ़ने के लिए मैं उत्सुक रहती हूं। मेरा बेटा प्राणिशास्त्र की कुछ किताबें लाया। किताबें सुन्दर थीं उल्ट-पल्ट कर देखा तो एक पुस्तक पक्षियों की थी। पढ़नी शुरू की तो पढ़ती गई। चिड़ियां मेरा खास प्रतीक हैं। उनकी किस्मों और स्वभाव के बारे में बहुत-सी जानकारी मिल गई और अब मैं उसे अपनी पेंटिंग्स में भाव या विषय के अनुसार प्रतीक रूप में प्रयोग करती हूं।

—'कला कला के लिए' यह बहस पुरानी है पर खत्म नहीं हुई। खास कर तथाकथित आधुनिकतावादियों और एब्सट्रैक्टवादियों ने इसे ज्यादा उछाला और स्थिति प्रश्न बनी हुई है तुम्हारा क्या विचार है?

—इस नारे को दो तरह के लोग उछालते हैं एक तो जो कला के नाम पर मानवीय संवेदनात्मक मूल्यों की पाबन्दी से कतराते हैं और मन मानियां व्यक्तिगत लाभ के लिए करना चाहते हैं। दूसरी तरह के वे सर्मपित लोग भी हैं जो लोक कल्याण की भावना से प्रेरित हैं और कला को प्रोफैशनलइज्म से बचाना चाहते हैं। दोनों की लड़ाई अपनी-अपनी तरह की है। दोनों की अति बुरी है। जो भी है मैं इस तरह के सलोगनज़ या नारों में विश्वास नहीं करती। मैं मानती हूं कला जीवन से अलग हो नहीं सकती। यह सलोगन ही गलत है। ज़िन्दगी से अलग कला जड़ हो जाती है। कर्मशियल होकर बिकाऊ हो जाती है। मानवीय मूल्य-संवेदना, करुणा और सौन्दर्य ही उसका बेसिक आधार होना चाहिए।

—लोक कला, अप्रस्तुत कला-प्रस्तुत कला, एबसर्ड कला, मूर्त कला तुम इसमें से किस शैली का प्रयोग करती हो?

—लोक कला का रूप जो स्थिर है उसे सदियों तक बार-बार दोहराया नहीं जा सकता। गति चलने का नाम है ठहराव का नहीं। मैंने अपने कला विकास के कई पड़ाव पार किए हैं विकसित होना ही कलाकार का जीवन है विकास का रुकना मृत्यु है। मैं बहुत अच्छे पोर्टरेट बना लेती हूं। शिक्षा भी मैंने श्री सोभा सिंह से काफी पाई परन्तु मैंने अपना 'स्टाइल' अपनी शैली विकसित की है। जिसे आप मिली-जुली शैली कह सकते हैं। एब्सक्ट्रेट कृति के डायमेंशनस बहुत होते हैं उसकी व्याख्याएं भी अनेक होती हैं अतः आज के बौद्धिक कुछ सभ्य लोगों को यह कृतियां ज्यादा रुचती हैं। मेरे चित्रों के प्रशंसक हैं मैं इससे आश्वस्त हूं। बहुत भीड़ उनकी कद्र करे इसके लिए मैं अपने स्तर से नीचे आने के लिए तैयार नहीं हो सकूंगी। हां, यह स्थिति बड़ी साफ है कि कला में खास कर चित्रकला में व्यक्ति का निज यानि कलाकार की 'निजता' काफी भारी होती है। पर अगर लोग उससे जुड़े ही नहीं तो मैं मानती हूं कि ऐसी कला भी असफल ही रहती है।

—तुम्हारी अधिकांश कलाकृतियों में औरत की जातीय पीड़ा व्यक्त है। इसके क्या कारण है? दूसरे औरत होने के नाते अपनी मंजिल की तरफ जाते हुए कोई मुश्किल...?

—अच्छा सवाल है, हालांकि दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं फिर भी मैं अपनी बात स्पष्ट करने के लिए दोनों का अलग उत्तर दूंगी। पहली बात औरत होने की पीड़ा सबसे बड़ी पीड़ा हैं क्योंकि वह काम करना जिस पर पुरुष ने अपना एकाधिकार समझा हुआ है कदम-कदम पर दुश्वारियों का सामना करना पड़ता है। आपने जरा-सी सफलता, यश या और कोई उपलब्धि पाई तो कई तरह के क़िस्से बन जाते हैं कौन गढ़ता है? दुश्वारियां कौन पैदा करता है?

ज़ाहिर है पुरुष। वह अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर उसे आने ही नहीं देना चाहता। औरत की सुन्दरता के गीत, उसके लिए सौन्दर्य प्रसाधन, उसके लिए देवी की पदवी, शक्ति की उपमा यह सब उसकी चालाकी है औरत को गुलाम बनाए रखने के तरीके हैं, साधन हैं। वीमेन लिब की बात अक्सर सुनती हूं लोग मेरा नाम भी उससे जोड़ देते हैं पर मैं जानती हूं कि यह झण्डा उठाने वाले भी पुरुष ज्यादा थे। बहुत नुकसान किया हैं औरत का इस मूवमेंट ने। आज़ादी-अधिकार आंतरिक शक्ति से प्राप्त होता है नारों या आन्दोलनों से नहीं। मेरी पीड़ा औरत होने की पीड़ा है वह केवल मेरी नहीं है सारी औरत जाति की है। मेरे चित्रों में भी वही व्यक्त हुई है। वह पीड़ा स्वतन्त्रता की कामना से नहीं स्वतन्त्रता के संघर्ष से जुड़ी हुई है। इसलिए उसमें उदासी है, करुणा है, भय है शायद टूट न भी है परन्तु मैं अब महसूस करती हूं कि उसमें पड़ाव चाहे कितने भी हों पर यात्रा है। टूटने में इंटेग्रेशन की तलाश है, वेदना में सपनों की चेतना है। इसीलिए उदास चित्रों में आसमान का टुकड़ा, सूरज, बादल, फूल-पत्तियां, पेड़ या रंगों के प्रभाव मेरी इस अनुभूति को प्रतीक रूप में प्रकट करते हैं। उनको जीवंतता देते हैं। परन्तु मैं औरत के अस्तित्व को जीना चाहती हूं इसे ही मैं अपने चित्रों में जाने अनजाने चित्रित कर जाती हूं।

रही दूसरी बात मुश्किलें। तो औरत के जन्म लेने के साथ ही साथ जन्म लेती हैं उसे केवल पुरुष नहीं पैदा करता खुद औरत भी करती है। अब जो स्थिति है औरतें शायद इसे आज़ादी समझती हैं—ये माडलिंग और यह प्रोफेशनल नंगापन मैं इस स्थिति से बहुत शर्मिन्दा हूं—नाखुश हूं—दु:खी हूं। क्या है बेजान घटिया से घटिया चीज़ के विज्ञापन के लिए औरत के जिस्म को ही माध्यम बनाया जाता है। वह साबुन हो, इंजन हो, शराब हो या ब्लेड सब की तुलना औरत के...। शेमफुल, डिसगटिंग। यह दूसरी तरह का शोषण है। जिसके लिए बहुत कुछ औरत खुद भी ज़िम्मेदार है।

—रंगों का चुनाव तुम कैसे करती हो ?

—रंग चुनने नहीं पड़ते मूड, अनुभूति या विचार या मन:स्थिति के अनुसार अपने आप ही बनते हैं। फिर भी शुरू-शुरू में मैंनें लाल रंग का उपयोग किया अब सोचती हूं तो लगता है कि चुनौतियां-प्रश्न तब ज्यादा तीव्र थे पर बाद में कुछ साफ्ट थोड़े शीतल रंग ज्यादा आ गए। पहले में संघर्ष ज्यादा था बाद में शायद उदासी सेडनैस ज्यादा प्रकट हुई इसीलिए ऐसा हुआ। पर हुआ ये खुद-ब-खुद कोई फार्मूला नहीं है मेरे पास।

—कुछ चित्रों में एब्सार्डटी और डिस्टार्शन भी काफी है।

—हां यह सब अनुभव और परिवेश की देन है। सुन्दरता और पूर्णता की तलाश की तरफ चलना है। जहां इस तलाश में पड़ाव आया वहां समाधि है चिंतन की। उसे मैंने कुछ चित्रों में औरत की पीठ दिखा था चित्रित किया है। दर्शक पूछते हैं क्यों पीठ है ? यही मेरी सफलता है कि प्रश्न जगते हैं।

❑

बस, थोड़ा सा झूठ

□ कमलेश भारतीय

जब-जब मेरा मित्र शहर में आता है तब-तब मुझे उससे मिलने उसके करीबी रिश्तेदार के घर जाना पड़ता है। आज शाम भी मित्र का फोन आया और उसने शहर में होने व रात बिताने की सूचना देते हुए मिलने की इच्छा जाहिर की।

मित्र के ये करीबी सम्बन्धी सरकारी क्वार्टर में रहते हैं। नम्बर बाहर ही लिखा रहता है। बार-बार आने-जाने से नम्बर याद रखने की जरूरत भी नहीं रह गई। अपने आप ठीक उसी घर के सामने मोटर-साइकिल रोक लेता हूं।

मित्र इन्तज़ार में सबसे पहले वाले कमरे में ही बैठा था। बार-बार आने-जाने से उस परिवार से मेरा भी एक सम्बन्ध बनता चला गया था। जब-जब जाता तब-तब उनके कॉलेज में पढ़ रहे, बेटी-बेटा 'हैलो अंकल' कहते भागे चले आते। घर में खुशी का माहौल बन जाता। कभी उनके कॉलेजों की शरारतों पर बात चल निकलती तो कभी उनके पापा की ईमानदारी, सादगी और सरकारी कार्यालयों पर हंसी-मजाक होने लगता।

यह सब नहीं हुआ, इस बार! कमरे में एक चुप्पी व उदासी छायी हुई थी। मैंने अपनी आशंका छिपायी नहीं। मित्र ने मुझे चुप रहने का इशारा किया वहां बैठे ही पानी का गिलास मंगवाया और एक कोने में बैठी नन्हीं बच्ची को उठा कर अन्दर ले जाने को कह दिया।

अब कमरे में एकान्त था, जो मुझे और भी खलने लगा था।

मित्र ने सिगरेट सुलगा दिया था। ऐश-ट्रे में राख झाड़ते हुए उसने पूछा था—हां, तो क्या महसूस कर रहे हो?

इस घर में बहुत बदलाव देख रहा हूं—शायद एकाएक इस बीच कुछ ऐसा ही घट चुका है जिससे इस घर का नक्शा बदल चुका है।

—आओ, बाहर, सैर करने चलते हैं।

—चलो, मुझे भी यहां कुछ अच्छा-सा नहीं लग रहा।

बाहर निकले तो उनके सम्बन्धी स्कूटर पर चले आये। मैंने उनसे बेटे मनु का हाल पूछा तब उन्होंने बताया कि अरे! आपको नहीं मालूम? उसकी शादी हो गयी। बस, दूसरे ही दिन हमने नयी जोड़ी को घर बसा लेने को कह दिया। मिलने आ जाते हैं। कल शाम ही आये थे। खाना यहीं खाया।

स्कूटर कोने में लगाते-लगाते वे एक ही सांस में इतना कुछ बता गये।

—और नीलू बेटी?

—वह . उसकी भी शादी हो चुकी है। एक छोटी-सी बच्ची है उसकी। मेरठ में मिल में काम करता है उसका पति। छुट्टियां मनाने आई हुई है पति आयेगा तो ले जायेगा। हम अकेले पड़ जायेंगे।

आवाज में जैसे आखिर तक आते-आते कम्पन-सा महसूस होने लगा। बाहर रोशनी में भी उनकी आंखें छिपी न रह सकीं।

मित्र ने बात टालते हुए कहा—हम अभी थोड़ा टहल कर आते हैं। जैसे ही घर से थोड़ी दूर निकले तब मित्र ने कहना शुरू किया 'कि तुम नहीं जानते, शायद कि ये रिटायर हो गये हैं। विदाई के दिन पार्टी में मुंह पर तो इनकी ईमानदारी और सादगी के गुणगान गाये गये और पीठ पीछे इनकी यही बातें अव्वल दर्जे की बेवकूफियां मानी गयीं।

अब सरकारी क्वार्टर खाली करने का आदेश मिल चुका है। जीवन-भर की ईमानदारी का परिणाम यह है कि अब सिर छुपाने के लिए एक छत तक नसीब नहीं हो रही। कहां जायेंगे, इसी चिन्ता में रहते हैं। अभी कहीं से मकान देखकर ही चले आ रहे हैं। हिसाब लगा रहे होंगे। कि पेंशन में मकान का क़िराया, बिजली-पानी के बिल निकाल कर क्या बच पायेगा।

—और मनु कहां है?

—बड़ा बेटा मनु इस घर में नहीं रहता। उसने अपनी मर्जी से शादी की है। अलग घर लेकर रह रहा है। आपसे झूठ बोला है इन लोगों ने कि हमने उन्हें अलग रहने की इजाजत दे दी। ये तो चाहते थे कि साथ रहें और हर हिन्दुस्तानी बाप की तरह यह भी चाहते थे कि बुढ़ापे का सहारा बने, छोटी बेटी की शादी में मदद करे। बस, इसीलिये वह साथ नहीं रहा। क्यों बोझ उठाये? जवानी उसके लिये मौज मनाने के लिये है, बोझ उठाने के लिये नहीं। फिर उसने साफ लफ्जों में बाप से कह दिया था कि जिस सादगी ईमानदारी पर आपको गर्व रहा है उसी से बेटी की शादी कीजिए।

—बड़ी बेटी नीलू घर में रहकर भी मिलने नहीं आई। क्या तुमने मेरे बारे में बताया नहीं था?

—अब क्या बताऊं तुम्हें? उसकी ससुराल में 'एडजस्टमेंट' नहीं हो सकी। यों एक साल में वह एक बेटी की मां बन गयी। पति-पत्नी के बीच पहले दिन से बनी दरार बढ़ती ही गयी, मिटी नहीं। यहां तक कि अपनी बच्ची को लेकर मायके चली आई। वह बच्ची जो कोने में गुमसुम बैठी थी, वह उसी की बच्ची थी।

—हां! तुम्हारा हैरान होना वाजिब ही है कि तुमसे मिलने क्यों नहीं आई। 'हैलो-अंकल' कह कर स्वागत करने वाली लड़की एकदम बदल चुकी है। शादी उसके लिए फूलों की सेज साबित नहीं हुई। उसकी हंसी ससुराल में ही कहीं खो गयी है। इस घर में वह खामोशी लेकर लौटी है।

—झूठ कह रहे हैं उसके पिता कि वह छुट्टियां मनाने आई है। उसका पति जल्दी ही लेने आयेगा। नहीं। नहीं, वह छुट्टियां मनाने नहीं, जीवन बिताने के लिए आई है। उसका पति उसे कभी मनाने नहीं आयेगा। बस, तलाक के कागज़ आयेंगे। वह मन बना चुकी है कि कागजों पर दस्तखत कर देगी। अपने पावों पर खड़ा होने की कोशिश करेगी।

—शो-रूम की तरफ ध्यान गया था तुम्हारा?

—क्या खास था वहां?

—वहां एक गुड़िया रखी हुई थी।

—हां, वह तो देखी थी। क्या खास-बात है उसमें?

—वह गुड़िया उसके जीने का सहारा है। वह उसी ने बनाई है। वह खिलौने बनाना सीख रही है। फिर अपना काम-काज शुरू कर देगी।

अब तुम ही कहो कि इस घर में पहले की तरह खुशी-खुशी तुम्हारा स्वागत कौन करता? अभी छोटी बेटी का बोझ सिर पर है, फिर शादी . ।

फिर सड़क के दोनों तरफ लगी रंगीन-रोशनियों के बावजूद हम दोनों के बीच एक अन्धेरा पसर गया। भीड़ के बावजूद खामोशी छा गयी।

जब घर लौटने लगे तब मित्र ने कहा—एक गुजारिश है तुमसे कि उनसे इन बातों की चर्चा भूल कर भी नहीं करोगे और जैसा वे कहेंगे तुम झूठ-मूठ का उत्साह दिखाते हुए मानते चले जाओगे। क्योंकि सिर्फ पेंशन का सहारा और इतने सारे दुःख। सिर्फ झूठ का ही सहारा है, यही उनके जीने का सहारा है।

बस, वे इसी खुशी में रहते हैं कि बड़ा बेटा मनाने आ जायेगा। बेटी पति के साथ अपने घर चली जायेगी। छोटी बेटी के लिए कोई राजकुमार हाथ मांगने आ जायेगा और उन्हें कोई सस्ता, अच्छा-सा किराये का मकान मिल जायेगा। दोस्त। कभी-कभी सच की बजाय झूठे सहारे बहुत जरूरी होते हैं, तुम उनसे ये सहारे छीनना मत।

उस अन्धेरे में कहीं दूर उनका घर नजर आ रहा था, जहां कुछेक उम्मीदें जगमगा रही थीं। □

भाषांतर—

पंजाबी कहानी

'निम्मो'

□ रामसरूप अणखी

उसका घर वाला फौजी था। साल में दो बार छुट्टी घर आता था। जब भी आता, निम्मो उसके लिए जैसे कोई खिलौना होती—मुश्किल से मिली कोई दुर्लभ चीज। छुट्टी खत्म होने पर वह उदास चेहरा लेकर लौटता। दोनों के चाव पूरे न हुए होते। बाकी समय में वह सास के पास रहती या मां के पास। सास भी अकेली, मां भी अकेली। न उसका बाप था, न ससुर। निम्मो का कोई भाई-बहन भी नहीं था।

वह सांवले रंग की, पुष्ट शरीर वाली लड़की थी। नैन-नक्श तीखे। उसकी खूबसूरत, बड़ी-बड़ी आंखों के सामने जिस्म के सांवलेपन की कोई पहचान नहीं रह जाती थी।

संतोखा गोरे रंग का भरपूर जवानी वाला गभरू था। शरीर से हृष्ट-पुष्ट। संतोखे की आंखें कुछ भूरी थीं। छुट्टी पर आने पर वह ऐसे निम्मो के आगे-पीछे रहता जैसे कुछ देखा ही न हो। या क्या पता दोबारा छुट्टी पर आना कभी नसीब होगा या नहीं। निम्मो के लिए दुनिया-जहान में वह सबसे बढ़ कर खूबसूरत था। पर फौजी की औरत को किस बात का मान! न सुहागिन, न विधवा।

वह छुट्टी पर आता तो घर का कुछ-न-कुछ संवार कर जाता। एक बार उसने नई बस्ती में छोटा-सा प्लॉट खरीद लिया। चारदीवारी भी बनवा दी। फिर एक बार आया, तो एक कमरा डलवा लिया। अगली बार दूसरा कमरा डाल कर और रसोई-गुसलखाना बनवा कर नई बस्ती में ही रिहाइश बना ली। सास-बहू सरदारनियां बन कर रहतीं। मुहल्ले में उनका पुराना मकान तो जैसे नरक था। लैंटरों को घुन लग चुका था और कड़ियां-

कोई पता नहीं था कि मेंह-पानी में कब शहतीरों के बीच का कोई
शहतीर बोदे हो चुके थे। कोई पता नहीं था कि मेंह-पानी में कब शहतीरों के बीच का कोई हिस्सा गिर पड़े और वे सास-बहू छत की मिट्टी के नीचे दबी पड़ी ढूंढने पर भी कहीं न दिखें।

नई बस्ती में अन्य गांवों से आकर बसे अलग-अलग जात-बिरादरियों के लोग थे। अलग-अलग काम-धंधे, नौकरियां, दुकानदारियां और जाने क्या-क्या कारोबार थे उनके। हर घर का अपना एक अलग संसार था। घर को घर की पहचान नहीं थी। पहचान थी भी तो सिर्फ बूढ़ों और बच्चों की। छोटे बच्चे गलियों में इकट्ठे खेलते और बूढ़े मर्द जहां भी बातें मिलतीं, रुक जाते।

तोखा-तीन महीने, दो महीने में मनीऑर्डर भेजता। छुट्टी पर आने पर इकट्ठा सामान भी रख जाता। सास-बहू की अच्छी गुजर हो रही थी। निम्मो कभी मायके में होती तो सास को बस अपने लिए दो रोटियां ही बनानी होतीं।

संतोखा नाम-कटों की सूची में आ गया। घर आकर वह निठल्ला पड़ा रहता। पल्ले की पूंजी खा-पी ली तो तंग रहने लगा। नौकरी की तलाश की, पर हर जगह बात बनते-बनते रह जाती। इस दौरान उसकी मां चल बसी। संतोखे को आखिर एक कताई मिल में चौकीदार की नौकरी मिल गई। उनका चूल्हा जलने लगा। कुछ महीने ही बीते थे। पंजाब के हालात खराब थे। मिल के गेट पर सुबह-सवेरे बम-विस्फोट हुआ। मिल के चार आदमी मारे गए – उनमें संतोखा भी था। निम्मो अकेली रह गई।

○

निम्मो की दुनिया में अन्धेरा छा गया। दिन चढ़ता तो छिपने का नाम ही न लेता रात आती तो खत्म ही न होती। पेट में घुटने दिये वह खाट का दम रखती। दिमाग तो सुन्न था। मांस में लहू ही नहीं रह गया था। माथे का इलाज तो कोई होगा, पेट को कौन समझाये ? मर्द के बगैर वह काट लेगी, पेट का क्या हीला करे ? जवानी की अपनी सौ मांगें, मुसीबतें। उसके पड़ोसी रुग्घे ने तरस किया और उसे दोनों जून की रोटी देने लगा।

रुग्घा भी निकट के गांव से उखड़ कर यहां इस नई बस्ती में नया-नया आकर बसा था। साइकल पर गांवों से दूध लेकर आता और हलवाइयों को दे आता। उसकी आमदनी अच्छी थी संतोखे के साथ उसकी दीवार सांझी थी। दिनोंदिन वह अपना काम बढ़ाता जा रहा था। एक कमरे वाला मकान था उसका। कुछ बरसों में ही उसने मोटर साइकल ले ली। दूध वाले डोल बड़े हो गए ; अपनी रोटी वह खुद ही पकाता था।

कुछ ही दिनों में चरचा होने लगा—रुग्घा ऊंचे कुल का होते हुए भी निम्मो के हाथ की पकी हुई खाता है। दुनिया गर्क होने पर आ गई, भाई ! धरम तो कोई रह ही नहीं गया है। जात-कुजात एक ही हो गई।

दुष्चर्चा की परवाह न करते हुए रुग्घे ने बल्कि दीवार की पन्द्रह ईंटें निकालीं और आने-जाने का रास्ता बना लिया। गली के लोग उसकी तरफ़ नज़र गड़ाकर देखते और व्यंग्य

से दबी-दबी हंसी हंसने लगते। दोनों को किसी की कोई परवाह नहीं थी। निम्मो को रोटी मिल रही थी, रुग्घे को औरत। निम्मो कहती—"मुझे तुम कोई और लगते ही नहीं। उस वक्त पूरी तरह संतोखे का रूप होते हो तुम। सच जानो, तुम्हारा चेहरा बदल जाता है—वही नाक, वही आंखें, वही माथा, हाथ-पैर भी वही, सब कुछ उसी का।"

रुग्घा बात सुनता और सिर झुका लेता। ख्यालों में बसी उसे अपनी औरत याद आने लगती, वह भी इसी तरह छोटी-छोटी बातें किया करती थी। कहा करती थी—"कसम भाई की, रुग्घे, मुझे तुमसे जुड़े होकर सांस मिलती है, जी करता है, तुम्हें पूरे के पूरे को निगल जाऊं।"

बस्ती के लंडूरे छोकरे भी निम्मो के घर का चक्कर लगाते रहते। कभी कोई आता, कभी कोई। जो भी आता, खासा समय निम्मो के आंगन में बैठा रहता। बातें करता। पर वह असली बात पर आते-आते फिसल जाती। उसका स्वभाव मृदुल था। भ्रम होता, जैसे हर कोई उसे अपने बस में कर सकता है, कोई अन्दर बैठा होता तो वह अपना दरवाजा खुला रखती। सामने आंगन में बैठती, कोई उठने का नाम ही न लेता, तो वह बर्तन-भांडे खड़काने लगती, झाड़ू लेकर आंगन बुहारने लगती। छोकरे आने से बाज नहीं आते थे। वह भी किसी से रूखा बोल कर बरजती-टोकती नहीं थी। उसके अन्दर डर बैठ गया था, ये लड़के कहीं उसे खराब न करने लगें। वह सोचती, आते हैं, जबान का रस लेकर चले जाते हैं, उसका क्या ले जाते हैं? यह हिम्मत किसी की नहीं थी कि जबरदस्ती उसकी बांह पकड़ ले।

और फिर मोहल्ले में यह चर्चा आम हो गई कि वह बदकार औरत है। लड़कों को खराब करती है। घर का काम छोड़कर लड़के उसके घर में घुसे रहते हैं। कोई कहता था—"निकालो इसे यहां से! बेटियों-बहनों वाले हैं हम—क्या असर पड़ता होगा!"

कोई और कहता—"वह क्या किसी को खुद बुलाकर लाती है? जिसे बुरा लगता हो, मत जाने दो, भाई, अपने लड़के को उसके पास!"

कोई सयाना रुग्घे को मति देने लगता—"कंजर के बाहमण! वह तेरे हाथों से निकल चुकी है! उससे कहते क्यों नहीं कि अन्दर की सांकल लगा के रखा करे! सब को अन्दर घुसाये रखती है। एक निकलता है, दूसरा जा घुसता है!"

रुग्घा हंसने लगता—"अपन ने क्या उसके साथ फेरे डाल रखे हैं? हमारी तरफ से जो मर्जी करे, हमें क्या? हमारी तो रोटी चलती रहती है......"

"ओए साले मेरे, काठी डालनी है तो ढंग से डाल......नहीं तो छोड़ पीछा!"

"ढंग से कैसे?" रुग्घा अब भी हंसता रहता।

"उससे कह—टांगें काट डालूंगा अगर मेरे सिवा किसी से कलाम किया तो! इतना भी नहीं कर सकता?"

"ओए, यह नर औरत है, कोई कितना भी आता रहे, जबान का रस लेता रहे, यह उस तरह की नहीं है", रुग्घा आंखों में गहराई लाकर जवाब देता।

"सारा मोहल्ला त्राहि-त्राहि कर रहा है !"

"क्या त्राहि-त्राहि कर रहा है ?"

"जो यह करती है ।"

"क्या करती है ?"

"तुम्हें नहीं मालूम ?"

"सब मालूम है, मुझे सब बताती है यह—कौन आया, क्या बातें करके गया है । किस की आंख कितनी मैली है ।"

"फिर यह टोके उन्हें !"

"एक दिन यह भी हो जाएगा ।"

"क्या हो-जाएगा ?"

"यह भी देख लेना – तुम्हारे सामने ही होगा ।" रुग्घे का रहस्य सामने वाले की समझ से परे होता ।

○

तीन दिनों से रुग्घा और निम्मो बस्ती में नहीं थे । तीन दिन तीन रातें उन दोनों के घर में ताले लगे रहे । वे आये तो सब के दांत जुड़े के जुड़े रह गए । वे पति-पत्नी बनकर आये थे । दूर कहीं जाकर किसी मन्दिर में रुग्घे ने निम्मो के साथ फेरे डलवा लिए थे ।

आज वे आये और कल दोनों घरों के बीच की दीवार ढह चुकी थी । दोनों घरों का एक घर बन गया था । गली की औरतें निम्मों के पास गईं तो उसने हंस-हंस कर सारी बात बताई । रुग्घा भी लहक-लहक कर सब कुछ बता रहा था ।

और फिर एक दिन, दो दिन, तीसरे दिन तरह-तरह की बातों का धुआं उठने लगा । बड़ी उम्र के लोग लानतें भेज रहे थे । कह रहे थे—"ऊंची जात के घर जन्म लेकर यह क्या किया ससुरे ने ।"

कोई कहता था—"यह तो कलंक कमा लिया रुग्घे ने !"

"कल को हम में से कोई करेगा ऐसा ही ।"

"वही तो ! धरम कहां रह गया आदमी का !"

"नामुराद जात-कुजात तो देख लेता ! गंदगी ही खानी थी तो कहीं और जाकर खा लेता । अपनी बिरादरी की खत्म तो नहीं हो गई थीं ।"

"इसे निकालो, यार, मोहल्ले से । जा भई, ले जा अपनी को !" किसी ने गरमी से कह डाला ।

"ठीक है, इसने तो लाज उतार दी अपने कुल की। मोहल्ले में रहने का अब इसका कोई हक नहीं है।"

"देखे कोई, कैसे कान पर जनेऊ टांगें घूमता है साला मेरा!"

"रवायत-मरजादा तो पूरी रखता है अपनी समझ से।"

"और करतूत?"

"करतूत सामने है!" बातें करने वाले जोर-जोर से हंसने लगते।

बूढ़ा दौली काफी देर से सब की सुने जा रहा था। अब वह बोला—"रुग्घे के तो पांव धो-धो कर पियो, भाई!"

"दौलत राम! सो क्यों?" उसकी बात पर सभी हैरान थे।

"परोपकार का काम किया है रुग्घे ने"—दौली गम्भीर होकर बोल रहा था।

"परोपकार? सुन लो भाई!" हंसी के फव्वारे आसमान तक उछल गए।

"लाला जी, होश में तो हो?" किसी ने बूढ़े दौली की बांह पकड़ ली।

"उसने लड़कों को बचा लिया।"

'लड़कों को बचा लिया?'

"हां—अब वह रुग्घे की घर वाली है। अपने आप निगाह रखेगा उस पर। लड़के बच गये। मोहल्ले पर परोपकार किया है एक तरह का रुग्घे ने। सोच कर देखो।"

दौली की बात वाकई सोचने लायक थी।

□

किताबें

1. 'समर्पित है मन',
कवि : डॉ॰ गोपाल बाबू शर्मा,
प्रथम संस्करण-1996,
अरविन्द प्रकाशन, 14/5 द्वारिकापुरी, अलीगढ़-202001, क्राउन,
पृष्ठ संख्या-64,
मूल्य-तीस रुपए (सजिल्द)।

विविध आयामी समस्याओं का अभिव्यंजन : 'समर्पित मन'

□ डॉ॰ मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृति एक ऐसे प्रतिभावान कवि की रचना है जो गत तीस वर्षों से निरन्तर अध्ययन-सृजन में लगा हुआ है। 'जिंदगी के चांद-सूरज' और 'कूल से बंधा है जल' के बाद यह कृति सामने आई है। संवेदना की सघनता, संश्लिष्टता तथा उसकी सफल अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'कूल से बंधा है जल' की चर्चाएं हुई हैं। कवि राग को जीवन का शाश्वत सत्य मानता है। वह वैयक्तिक राग हो, देशानुराग हो या अपनी यथार्थ या काल्पनिक प्रेयसी के प्रति राग-यही जोड़ता है। मनुष्य को मनुष्य बनाता है। कोई इसे कवि की भावुकता और रूमानियत कह दिया करे, परन्तु जब तक कवि स्वयं प्रेम-ज्वार से आप्यायित नहीं होगा, वह मनुष्य, समाज और देश के प्रति क्या प्रेम प्रकट करेगा। कवि का 'स्वांत: सुखाय' शीघ्र ही 'परहिताय' हो जाता है। वह अपने प्रेमभाव की अभिव्यक्ति के साथ जीवन-जगत की विविध आयामी समस्याओं पर भी दृष्टिपात करता चलता है। इसका सीधा अर्थ है कि वह अपने परिवेश व समाज के प्रति ईमानदार और जागरुक रहता है।

मनुष्य दूध पीकर जीता है, तो राक्षस रक्त पीकर, किन्तु भव-सागर का हलाहल शिवशंकर ही पीते हैं। दु:ख का हलाहल पीकर अमृत-दान शिव कर सकते हैं या गोपाल

बाबू शर्मा जैसे कवि ही। इसलिए कृति दुःख देने वालों को समर्पित है। राग को जिलाने, पाने की जरूरत इसलिए हो गई है, क्योंकि जीवन मूल्य बदल गये हैं। जीवन खंड-खंड हो गया है :

"प्रश्नवाचक बनी आज की जिंदगी।
उत्तरों के बिना जी रही जिंदगी।
प्रीति के आंगनों में दिवालें उठीं:
अब घुटन से भरी हो गई जिंदगी।'

(मुक्तक—1)

'प्रीति के आंगन में दीवालों का उठना' अनेकार्थक है। यही सारी मूल्यहीनता का केन्द्र है। सारे अनार्थों और अव्यवस्थाओं का कारण भी। इसीलिए कवि धन, व्यापार, विद्वता को महत्ता न देकर मनुष्यता को तरजीह दे रहा और उसके हित, सुमन, नमन, श्रद्धा की आवश्यकता पर बल दे रहा है : 'महक देने के लिए मन, सुमन होना चाहिए।'

(मुक्तक—4)

कवि मनुष्य की मनुष्यहीनता, व्यावसायिकता, यांत्रिकता, धर्म के खोखलेपन, जीवन की विद्रूपता, विसंगति पर घोर चिंता व्यक्त करता है और कबीर की तरह 'जा घट विरह न संचरै ता घट जान समान' की हिमायत करता चलता है। परिस्थिति की विपरीतता हो, घटापोप अंधकार, निराशा के मंडराते काले बादल, एक ही उपाय है, एक ही संबल है, मार्ग पाने का, गंतव्य तक जाने का :

"स्नेह के बल पर लड़ेगा जब दिया,
आंधियों से तभी पाएगा विजय;
गोद जो तम की उजालों से भरे,
वह सुहानी सुबह होनी चाहिए।"

(मुक्तक—12)

प्रेम के बल पर हर विषमता से लड़ने की हिम्मत और सुहानी सुबह की कामना। "आशा के प्रदीप को जलाए चलो धर्मराज' (कुरुक्षेत्र-दिनकर) ही आज की समस्याओं का उत्तर है।

कवि इन शाश्वत प्रश्नों से टकराता है। जिन्दगी के भोग और तज्जन्य अनुभव को बड़ी कलात्मकता के साथ उकेरता है। साथ ही समकालीनता से पलायन नहीं करना, उससे दो-चार कर ही छम लेता है : 'आंसू नहीं पुंछे कुटियों के,/ तो ऐसी खुशहाली से क्या ? (मुक्तक—16) और—"जैन-प्रतिनिधि हैं, जन-सेवक हैं,/किंतु सुरक्षा में रहते हैं;/दिन-दिन दूना रात चोगुना,/चमक रहा है इनका धंधा।" (मुक्तक—26)

महात्मा गांधी ग्रामोत्थान की बात करते थे, कुटिया में राम-राज्य लाने की कल्पना करते थे, विनोबा भावे अंत्योदय का प्रकल्प लेकर चलते थे। परन्तु जब तक धन का असमान वितरण होगा, एक की रोटी पर नमक नहीं होगा और एक के गोदाम में सैकड़ों बोरे नमक सड़ेगा—देश का कल्याण नहीं हो सकता। आज जनाधार के अभाव में डूब रही है।

जन-सेवक जन-भक्षक बन गए हैं। जिन्हें जन-सेवा में तन-मन-धन अर्पित करना चाहिए, वे स्वयं सुरक्षा में चल रहे हैं। जनता के धन पर संसद में ठाट मनाने वालों के प्रति कवि क्षुब्ध है और जनता की मार्मिक स्थिति का रेखांकन किया है :

"वे संसद में पहुंचे उनके ठाट हो गए।
राज-मार्ग में बिछे गलीचे टाट हो गए।
हम तो भाई आम आदमी हैं जनता के,
हाट-बाट खो बैठे बारहबाट हो गए।"

(मुक्तक—23)

पूरी कृति में एक ही चिंता है—मनुष्य-मनुष्य बने। 'वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जे पीर पराई जाणे रे' (नरसी मेहता) 'कबिरा सोई पीर है जो जाने पर पीर' (कबीर) तथा 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' (तुलसी ऐसे शाश्वत सूत्रों से संकलित-प्रेरित हैं सारे मुक्तक। प्रभु ईसा मसीह ने पूछा था अपने अनुयायियों से—"मैंने बांसुरी बजाई, तुम नाचे नहीं, में फूट-फूटकर रोया, तुम्हारी आंखें नम नहीं हुई।" कवि ऐसे ही हमसफर, हमदम, हमदर्द की आद्यंत खोज करता रहा है। जन-जन में यह चेतना भरता रहा—'तुम जरा औरों के लिए कष्ट सह लो, औरों का दुःख बांट लो—सब सुखी होंगे

"वेदनाओं से किसी की,
यदि परिचित हो सके तुम।
आंसुओं के द्वार जाकर,
यदि न पल भर रो सके तुम।
स्वयं को कुछ भी समझ लो,
हो नहीं इन्सान लेकिन।
अगर कांटों के तन में,
सुमन-सौरभ बो सके तुम।"

(मुक्तक—72)

मुक्तक 77 से लेकर मुक्तक 118 तक में कवि ने अपने प्रेम, वियोग, प्रेमज अनुभूतियों का चित्रण किया है। यह इतना जीवंत और मार्मिक बन पड़ा है कि 'इस पार प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा' (बच्चन) की याद दिला देता है, परन्तु इसमें प्रेम का जो स्वर्गिक, आदर्श और समर्पित रूप-विन्यास है, वह इन्हें (मुक्तकों को) छायावादी प्रेम-सौंदर्य से जोड़ता है तो उसके लोक-संग्रही रूप का अनावरण भी करता है। प्रेम जहां पूजा जाता हो, उसकी आरती उतारी जाती हो ('प्यार की पूजा हमेशा,/आरती उसकी उतारी)' (मुक्तक-86), वहां वह प्रेरणा और संबल बन जाता है।

गीतों की तरलता, सरलता, बहाते जाने की क्षमता और अपने पीछे एक गूंज छोड़ने की विशेषता इनमें व्याप्त है। एक-एक मुक्तक अपने आप में स्वतन्त्र है, पर 77-118 तक में एक सातत्य का बोध होता है। इस प्रेम-समर्पण की श्रृंखला को कुछ छोटा किया जा सकता, तो यह सार्थक होता। छंद, लय, शब्द-चयन सभी दृष्टियों से कृति महत्वत्वपूर्ण और पठनीय है। □